भगवान आदिनाथ

आदिपुरुष आदीश जिन आदि सुबुधि करतार

धर्म धुरन्धर परम गुरु नमूं आदि अवतार

सृष्टि के सृजनहार, पृथ्वी के प्रथम अवतार, आदिब्रह्मा

कैलाशपति शिव

और

बाबा आदम

भगवान

आदिनाथ

अनिल पाकेट बुक्स ईश्वर पुरी मेरठ शहर

लेखक

भगवान आदिनाथ प० वसन्तकुमार जैन शास्त्री

मूल्य तीन रुपये

दो शब्द

पाठक वृन्द

महान् आत्माओं की विशेषतायें क्या थी ? वे क्या जन्म से ही महान् आत्मा होती है ? उन्होने ऐसा क्या कार्य किया–जिससे वे महान् आत्मा बन गई ? क्या हम भी महान् आत्मा बन सकते हैं ? आदि प्रश्न एक आध्यात्मिक, सुखशान्ति के हेतु आवश्यक प्रश्न है।

प्रस्तुत पुस्तक मे आपको उपरोक्त सभी प्रश्नो का सहज, सरल और निष्पक्ष उत्तर मिलेगा। आध्यात्मिकरस, भौतिक वादियो के लिये एक कडवी दवा होती है। परन्तु यहाँ वही कडवी दवा मीठे मीठे बतासे मे रख कर पिलाई जा रही है।

उपन्यास, लेख, निबन्ध सभी ज्ञान की वृद्धि के कारण-भूत तथ्य होते है। पर अनैतिकता के पोषक लेख उनको दूषित बना देते हैं। अत जीवन मे नैतिकता को प्राथमिकता देते हुये उत्कृष्ट लेख ही पढना योग्य है।

इसी तथ्य की पुष्टी के लिए आपके कर कमलो मे यह पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है। आशा है कि इसका अध्ययन करके शाति का आस्वादन करेगे।

विनीत :—

(रानीमिल मेरठ) प० बसतकुमार जन शास्त्री

(शिवाड-राजस्थान)

भगवान आदिनाथ

(आमुख)

आदिनाथ कहो या ऋषभदेव कहो। दोनो नाम एक ही हैं। ऋषभदेव के विषय मे ऋग्वेद मे तथा पुराणो मे पुष्कल विचार सामग्री उपलब्ध होती है। श्रीमद् भागवत महापुराण के अनुसार महाराज नाभि के यहा मरुदेवी की कुक्षी से स्वय विष्णु ने अवतार ग्रहण किया था। श्रमण मुनियो के धर्मों का निर्देश करना उनके इस अवतार का मुख्य प्रयोजन था। यथा—'वर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त। भगवान् परमर्षिभि प्रसादित्त नाभे प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु कामो वातरशनाना श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिना शुक्लयातनुरवत तार।,—श्रीमद् भागवत महापुराण, ५/३/२०'

ब्रह्माण्डपुराण मे प्रियव्रत की वशावली का उल्लेख करते हुए कमश प्रियव्रत से आग्नीध्र, आग्नीध्र से नाभि, और नाभि से ऋ.भ की उत्पत्ति का वर्णन किया है। वही यह उल्लेख भी हुआ है कि ऋषभ समस्त क्षत्रियो के पूर्वज हैं उनके सौ पुत्र हैं, जिनमे भरत ज्येष्ठ (बड़े) हैं। यथा —

'आग्नीध्र ज्येष्ठदायाद काम्यापुत्र महाबलम्।
प्रियव्रतोऽभ्यषिचत् त जम्बूद्वीपेश्वर नृपम्॥
तस्यपुत्रा बभूवुर्हि प्रजापति समा नव।
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किं पुरुषोऽनुज.
नाभेर्निसर्ग वक्ष्यामि हिमाह्वेऽस्मिन्नि वोधत।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्र मरुदेव्या महाद्युतिम्॥
ऋषभ पार्थिव श्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्।
ऋषभाद् भरतो यज्ञे वीर पुत्रशताग्रज॥

—ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्व २/१४

शिवपुराण मे स्वय शिव ने ऋषभ को अपना अवतार कहा है। यथा

इत्थप्रभव ऋषभोऽवतारी हि शिवस्य मे।
सता गतिर्दीनबन्धुर्नवभ कथित स्तव ॥

शिव पुराण ४/४८

ऋगवेद के प्रथम मण्डल मे ऋषभदेव के लिये एक सूक्त मे उन्हे प्रजाओ को धनादि से प्रसन्नता प्रदान करने वाला राजा कहा है और इन्द्र को कृषि जीवियो का स्वामी बताया गया है। यथा–

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनाना राजा कृष्टीना पुरुहूत इन्द्र।
स्तुत श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग युक्त्वा हरि वृषणा याह्यर्वाङ ॥

ऋक १/२३/१७७

अत

णमह णव कमल कोमल मणहरवर वहल कति सोहिल्ज,
उसहस्स पायकमल ससुरासुर वदिय सिरसा ॥

– देव मनुष्य जिनकी वन्दना करते है। वह कोटि सूर्यों की प्रभा के समान है, उन्है नित्य त्रिकाल वन्दना है।

—मुनि श्री विद्यानन्द जी

(श्री पुरूदेव भक्ति गगा से साभार)

-: जयमंगलम् :-

घोरतर ससार वारा शिगत तीर !
नीराजना कार रागहर ! ते ।
मारवीरेशकर को दण्ड भग कर—
सार ! शिव साम्राज्य सुखसार ! ते ॥

जय मगल नित्य शुभ मगलम् ।
जय विमल गुण निलय पुरुदेव ! ते ॥
जय मगलम् ॥

हे घोरातिघोर ससार सागर-पारतीरगामिन ! आरातिक्य दीप से अर्चा करने वालो के रागहारिन । विश्व विजयी कामदेव के कोदण्ड (पुष्प चाप) को भग करने वाले । सारभूत शिव साम्रा-ज्य के सुख भोक्ता । आपकी जय हो, नित्य मगल हो ।

हे विमल गुणो के निवास स्थान भगवान पुरुदेव (आदिनाथ) आपको जय हो । आप जय और मगल स्वरूप हैं, नित्य शुभ मगल आत्मा हैं ।

१–धन्य धन्य मरुदेवी–कुक्षी !

उत्तम और अत्युत्तम !–

आर्य क्षेत्र के मध्य मे नाभि के सदृश शोभायमान यह नवनिर्मित नगरी सत्यत सर्वोत्तम ही है। इसीलिए तो यह सर्वप्रिय है। सर्वप्रिय होने के कारणभूत ही तो इसका कोई भी शत्रु नही है–और कोई भी शत्रु न होने से यह युद्ध से भी रहित है। युद्ध की आशका यहाँ न होने से ही तो इस नवनिर्मित अनुपम नगरी का नाम 'अयोध्या' रखा गया है। अयोध्या नगरी आज सजी सजाई दुल्हन की तरह लग रही है। शरमाई सी, अलकाई सी, अगडाई सी यह नगरी स्वत ही मन को मोह रही हैं। रगबिरगी कलियो से शोभित, मन्द सुगन्ध पवन से सुरभित, सुमधुर चहचहाते-विहग गण से चर्चित, और मदमाती, इठलाती, सरसराती स्वच्छ शीतल नीर सहित सरिता से मण्डित यह नगरी इन्द्र की पुरी को भी मात दे रही है।

प्रथम तो अयोध्या ही ऐसी-अनुपमा-नगरी, इसपर भी ठीक इसके मध्य मे अनेक पताओ से मण्डित भव्य विशाल और मनोज्ञ भवन-जिसे देवताओ ने निर्मित किया-तो और भी आकर्षक हो गये है दूर से ही भान हो जाता है कि यही यहा के शासक का महल है। भान भी सत्य ही है। क्योकि यह भवन यहाँ के कुशल और नीतिज्ञ शासक-महाराजा 'नाभि' का आवास-गृह है। महल के ठीक मध्य मे एक विशाल और मनोज्ञ साज-सज्जा से सुसज्जित सभा मण्डप (हॉल) है–जिसमे अवकाश के समय महाराजा अपनी रानी एव अन्य सलाहकारो के साथ विचार-विमर्श किया करते

हैं। इसके दाईं ओर एक और कक्ष है, जो तो ऐमा लग रहा है कि जिसे मानो इन्द्र ने अपना स्वय का कक्ष लाकर यहाँ रख दिया हो। इस कक्ष मे आप-दिवारो पर, छत पर, फर्श पर अर्थात प्रत्येक स्थान पर अपना मुख दर्पण के सदृश देख सकते हो।

मालाए, झाडफनूस, झालरे, प्राकृतिक प्रकाश, और सुरभित महल से यह कक्ष ऐसा लग रहा है कि मानो स्वर्ग यही है।'" यही है महाराज नाभि का शयन कक्ष। जहाँ महाराज 'नाभि अपनी अतिप्रिय महारानी 'मरुदेवी' के साथ विश्राम करते हैं।

महारानी मरुदेवी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन लेखनी लिख सकने मे असमर्थ है। क्योकि ऐमा अनुपम सौन्दर्य देखने के पश्चात भी अवाक् दर्शक-चाहे वह सुरपति ही क्यो न हो—उस सौन्दर्य को लेखनी से बद्ध नही कर पाता। करे भी कैसे ? उस-सौन्दर्य को लिखा कैसे जाये ? किसकी उपमा से उसे रचा जाये ? इतना अनुपम सौन्दर्य जिसका वर्णन, अवर्णनीय है उसे कैसे कहा जाये? अत आचार्य जिनसेन के शब्दो मे—

सुयशा सुचिरायुश्च सुप्रजाश्च सुमगला।
पतिवत्नी च या नारी सा तु तामनुवर्णिता ॥
समसुप्रविभक्तांग मित्यस्या वपुर्रुजितम।
स्त्री सर्गस्य प्रतिच्छन्द भावेनेव विविर्व्यधात ॥

इतना ही कहा जाना योग्य है।

भोग भूमि का समय प्राय नष्ट हो गया। कल्प वृक्ष न रहे—इसी कारण महलो का आवास हो रहा है। महल भी देवो द्वारा निर्मित। क्योकि उस वक्त का मानव क्या जाने कि महल कैसे बनाये जाते हैं। अर्धनग्न मानव, विकार से दूर और विज्ञान से रहित बड़ा ही अजीब सा लग रहा था। यद्वातद्वा विकार की लहर दौडती भी नजर आ रही है। मानव अब भूख भी महसूस करने लगा है और प्यास भी। फिर भी मानव अभी व्याकुल।

हुआ था।

झिलमिल सितारो से जडी रजनी रानी दुल्हन बनी अनुपम साडी ओढे जैसे थिरक रही हो प्रेम बरसा रही हो, उमग की धडकन के तार बजा रही हो। और जैसे मानो अपने आप मे लाज की मारी सिकुडी जा रही हो। शान्त वातावरण और शीतल मन्द सुगन्ध पवन कही दूर पर क्षितिज की ओट से विद्युत की चमक भी कभी कभी दिखाई दे रही थी। ऐसे सुहावने समय मे ...... ।

हाँ! हा! ऐसे सुहावने समय मे मरुदेवी अपने प्रियतम महाराजा 'नाभि' के साथ शयन कर रही थी। दिल धडक रहा था मीठा मीठा, और चेहरा मुस्करा रहा था। नेत्र की पलकें अर्ध-विकसित थी और अग प्रत्यग अन्दर ही अन्दर नृत्य कर रहा था। महाराज नाभि ने करवट बदल ली थी और गहरी निद्रा मे डूब चुके थे। पर रानी ·· रानी मुस्कराती जा रही थी। जैसे जग रही हो। जैसे उसे सभी कुछ बातो का भान हो। पर रानी तो निद्रा देवी की सुहावनी गोदी मे अनुपम और मीठे स्वप्नो मे मौज ले रही थी।

शरमा कर, लजाकर और अपने आप मे सिकुडती हुई रजनी ने प्रस्थान किया। प्राची का चेहरा मुस्करा उठा। बगियो मे बहार नाच उठी। फूलो की कलिया खिल उठी और रग बिरगी चिडिया अपना निरक्षरी गाना गा उठी। प्रभाती का मगल वाद्य मधुर और सुहावने सुर मे बजने लगा··· तभी दासियो ने रानी मरुदेवी के शयन कक्ष मे प्रवेश किया।

रानी मरुदेवी अग प्रत्यग को सम्हालती हुई जग रही थी। उसके कानो ने बाहर का मगल वाद्य सुन लिया था। प्रभात का मीठा शोर भी कानो ने सुन लिया था। महारानी को जगती हुई देखकर दासियो ने आनन्द भरे शब्दो मे जय बोली और मगल

गान प्रस्तुत किया। रानी अब मदमाती हस्थिनी की भाति उठकर चलने लगी। प्रसन्न चेहरा-मीठी मीठी मुस्कराहट के फूल बरसा रहा था। दासियो की ओर शरमिली नजर विखेरती हुई रानी हसनी की चाल चल रही थी।

स्नान कक्ष मे पहुच कर रानी ने दैनिक, कार्य किये। सुगन्धित जल से स्नान किया। दासियाँ उसके प्रत्येक अग को शीतल जल से सुगन्धित उबटनो के द्वारा सहलाती हुई धो रही थी। आज स्नान करती हुई भी रानी मरूदेवी प्रसन्नता की लहरो मे खोई हुई थी। अग की प्रत्येक कलियाँ खिल रही थी।

स्नान कर चुकने के पश्चात् सुन्दर वस्त्राभूषण से सुन्दर सुडौल शरीर को सजाया गया। आज प्रत्येक आभूषण, प्रत्येक परिधान, मुस्करा रहा था, नाच रहा था और शरीर से चिपका जा रहा था। रानी तो खोई हुई थी अपने आप मे।

'महाराज श्री कहाँ है ?' मुख खुला और मोती चमक उठे। रानी ने आनन्द भरे शब्दो मे एक दासी से उक्त प्रश्न किया। रानी ने भी अपने शब्दो को अपने कान से सुना तो लज्जा गई अपने आप मे। जैसे होश सम्हलती सी रानी ने एक दम पूछा

'मैंने अभी क्या कहा था ?'

'आपने पूछा था कि महाराज श्री कहाँ है ?'

'ओह ! हा तो बताओ कहाँ है महाराज श्री ?'

'महाराज श्री तो सदैव ही इस वक्त राजदरबार मे विराजे रहते है। क्या आपको......'

'हा ! हा ! मुझे ज्ञात है। ज्ञात है। जाओ ! सन्देश निवेदन करो कि मैं आ रही हूँ।'

'जैसी आज्ञा महारानी जी।'

एक दासी धीमे धीमे कदम उठाती चली। अन्य दासियाँ विहम उठी। तभी रानी ने पूछा।

'क्यो क्या बात है ?'

'बात तो जरूर भी कुछ न कुछ है महारानी जी।'

'क्यो ?'

'क्योकि आज तो आप पूर्ण विकसित पुष्प के समान खिली हुई हो। आप का अंग प्रत्यग भी आपसे सम्हाले नही सम्हल रहा है और चेहरा ? ··चेहरा तो आपकी सारी बाते कह रहा है।'

'चल हट।···ज्यादा जबान क्यो चलाये जा रही है। यह सत्य है कि तू मेरी सहचरी है–पर ज्यादा नही बोला करते।'

'ना सही। पर आप मन को भी तो समझा लीजिए वह तो न बोलने वालो को भी बोलने को कह रहा है।'

'ओह !· मै क्या करू ! आज ··आज तो।'

तभी दासी आगई। निवेदन करने लगी 'आपका सन्देश महाराज श्री के चरणो मे पहुँचा दिया गया है। महाराज श्री ने आज्ञा प्रदान करदी है।'

'ओह !··' रानी मरुदेवी धीमी धीमी, मस्त भरी चाल से चलने लगी। राज दरबार बिखर चुका था–अर्थात सभी उपस्थित जन जा चुके थे।

महाराज अपनी प्रियतमा की प्रतीक्षा मे बैठे थे। तभी रानी पहुची। महाराज नाभि ने अपना अर्धासन दिया और रानी महाराज श्री के निकट बैठ गई।

'कहो ! ··आज यहां आने का क्या कारण बन पड़ा ?'

'स्वामिन ·····।'

'बोलो ··बोलो ··।'

'आज मैं बहुत ही प्रसन्न भी हूँ और चिन्तित भी।'

'अरे ! यह खट्टा मीठा स्वाद क्यो ?

'स्वामिन······।'

'कहो भी ! क्या प्रसग ऐसा सामने आ गया है। जिससे मन

वश मे ही नही हो पा रहा है।'

'आज रात्रि को मैंने अद्भुत स्वप्न देखे हैं।'

'स्वप्न ? कैसे स्वप्न ?'

'जी हा प्रभो ! अर्धरात्री के पश्चात् मैंने पूरे सोलह स्वप्न देखे हैं। स्वप्नो को देखने के बाद ऐसा लग रहा है ''ऐसा लग रहा है कि --'

'हा ! हाँ ! कहो'''कैसा लग रहा है ?'

'कि मानो तीनो लोको की सम्पदा ही मुझे मिल गयी हो। कि मानो मैंने अमूल्य निधि प्राप्त करली हो। ` कि मानो मैंने जीवन का सार उपलब्ध कर लिया हो।'

'अच्छा ! तो कहो क्या स्वप्न थे वे।'

'हा वही तो मैं आपसे निवेदन करने आई हूँ। इसलिये कि आप मुझे बतायें कि उनका फल क्या है ?'

'जरूर बताऊगा। अब बोलो क्या स्वप्न थे ?'

रानी मरुदेवी ने सभी सोलह स्वप्न बता दिये और उनके फल सुनने को आतुर हो उठी। महाराज नाभि ने जब रानी के मुख से स्वप्नो को सुना तो वे भी फूले न समाये और झट से रानी को अक से लगा लिया। रानी सिहर उठी '

'अरे ! आपको क्या हो गया ? - मेरे स्वप्नो का फल तो बताइये।'

'रानी तुम धन्य हो। तुम्हारे स्वप्न अत्यत आनन्ददायक हैं, और अनुपम हैं।'

'अब फल भी बताओगे या नही।'

'सुनो रानी ! ' तुम्हारे गर्भ मे आज महान पुण्यशाली' केवल ज्ञान साम्राज्य को प्राप्त करने वाली, तेजस्वी, पृथ्वी को आनन्दित करने वाली, सुर, नर और खग अर्थात सभी देवो, महेन्द्रो, नरेन्द्रो से पूजित महान आत्मा आ गई है।

'अरे !!!' रानी का रोम रोम नाच उठा। अपने आपको सम्हालती हुई रानी ने पुन पूछा–'किन्तु आपको कैसे ज्ञात होगया कि ·· '

'क्यो ? जैसे जैसे तुमने स्वप्न देखे वैसे वैसे ही मैंने उसका स्वप्न-निमित्त-ज्ञान के द्वारा जान लिया।'

'मैं अच्छी तरह न समझ सकी।'

'तो क्या एक, एक, को समझाना होगा ?'

'हाँ स्वामिन !'

'तो सुनो ! ऐरावत हाथी देखने से उत्तम पुत्र होगा। उत्तम बैल देखने से समस्त लोक मे उच्च होगा। सिंह देखने से अनन्त बलशाली होगा। मालाओ के देखने से समीचीन धर्म का चलाने वाला होगा।'

'अरे !!!'

'सुनती जाओ लक्ष्मी को देखने से सुमेरु पर्वत पर देवो द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा। पूर्ण चन्द्रमा को देखने से समस्त प्राणियो को आनन्द देने वाला होगा। सूर्य देखने से देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा। दो कलश देखने से अनेक निधियों का स्वामी होगा।

'आश्चर्य !!!'

भोली ! इसमे आश्चर्य की क्या बात है। वह तो पुण्यशाली है ही पर तुम अपने आपको भी तो देखो कि जिसकी कुक्षी मे ऐसा पुण्यात्मा अवतरित हुआ है।'

'ओं ' ओह रानी फिर आनन्द सागर मे नहा गई।

'हाँ तो मैं तुम्हे बता रहा था ' आगे सुनो युगल मछलियां देखने से सुखी होगा। सरोवर देखने से अनेक लक्षणो से सुशोभित होगा। समुद्र देखने से केवली होगा। सिंहासन देखने से जगत का गुरु होगा, साम्राज्य को प्राप्त होगा। देवो का विमान देखने से

स्वर्ग से अवतीर्ण होगा। नागेन्द्र का भवन देखने से अवधि ज्ञा का धारी होगा, चमकते हुए रत्नो की राशि देखने से गुणो व भण्डार होगा। निर्धूम अग्नि देखने से मोक्ष का अधिकारी होगा और · '

'हाँ ! हाँ ! स्वामिन–कहिये ! कहिये ! और क्या···?'

'और जो तुमने अपने मुख मे प्रवेश करते हुये वृषभ को देख है ना ?'

'हा ! हाँ ! देखा है।'

'तो समझ लो कि भगवान ऋषभदेव ने तुम्हारे गर्भ मे शरीर धारण कर लिया है।'

'ओह ! · रानी मरूदेवी, प्रसन्नता, मोद, और उमग से भरी नाच उठी। आज उसे सारा ससार नाचता हुआ, गात हुआ दिखाई दे रहा था। वह अपने ही मोद-विचारो मे खोई ज रही थी 'मै 'भगवान ऋषभ देव की माँ बनू गी ? ·· जिसक सारा ससार पूजा करेगा, जिसको तीनो लोको का साम्राज्य प्राप होगा, जो समस्त प्राणियो का हितकारी होगा क्या मैं उनक मा बनू गी।–ओह ! मैं धन्य हूँ। मैं तो धन्य हूँ ',

'क्यो ? क्या विचार रही हो ?'–राजा नाभि ने अपनी रा की मुख छवि को देखकर जान लिया कि यह अपनी भावी सन्ता की खुशी मे मोदभरी उडान ले रही है।

'ओह ! कुछ नही कुछ भी तो नही।····'

तभी दासियो ने निवेदन किया 'भोजन का समय हो ग महारानी जी।'

महाराज नाभि और महारानी मरूदेवी ने भोजन कक्ष प्रवेश किया। आज रानी मरूदेवी भोजन का एक ग्रास भी व समय मे समाप्त कर पा रही थी। आनन्द सागर मे डूबी रा आज फूली न समा रही थी। सारा महल, कोना कोना, महल ·

प्रत्येक वस्तु आज महारानी मरुदेवी को आनन्द की मौज मे लह-राती मदमाती और नाचती दृष्टिगत हो रही थी। तभी…

'महारानी मरुदेवी जी की जय हो।'

'आप ? · आपका परिचय ?'

'हम स्वर्ग की देविया है। महाराज इन्द्र की आज्ञा से हम आपकी सेवा मे रहने को आई हुई है। आप हमे स्वीकार कीजिए और आज्ञा प्रदान कीजिये कि हम आपकी सेवा कर सके।'

'अरे !— ··पर आपको ·····अर्थात इन्द्र महाराज को कैसे मालूम ····'

'आप आश्चर्य ना करिये राज रानी जी ! महाराज इन्द्र को अवधिज्ञान से सब कुछ मालूम हो गया है। आपके पवित्र गर्भ मे ज्योही भगवान ऋषभदेव का अवतरण हुआ कि उनका आसन हिल गया और अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि आपके पवित्र गर्भ मे भगवान ने शरीर धारण कर लिया है।'

ओह !—'

महाराज नाभि ने अपनी भाग्यशालिनी रानी के मुख की तरफ मुस्कराते हुये देखा। रानी अपने आप मे प्रसन्नता से भरी जा रही थी। ज्यो ही महाराज की निगाह से निगाह मिली त्यो ही रानी और भी पुलकित हो उठी।

क्षण बीता, पल बीता, घडी बीती और दिन बीता। समय कितना व्यतीत हो गया—यह मालूम ही न हो सका। रानी मरुदेवी का गर्भ बढ रहा था और उधर पृथ्वी पर नया रग छा रहा था। देवियाँ—सदैव महारानी के साथ रहती। हास्य, अध्ययन कौतुक आदि के द्वारा गर्भवती रानी का दिल बहलाया करती।

आज महारानी अपने आपको महान ज्ञानवति, बलवति और विचारक देख रही थी। कभी कभी तो वह आश्चर्य कर बैठती कि मुझमे इतना सब कुछ आ कहा से गया ? तभी देविया समाधान

कर देती 'आश्चर्य न करिये देवी जी ! जैसी आत्मा गर्भ मे आती है वैसे ही लक्षण माता मे भी हो जाते हैं ।' और यह सुनकर रानी फिर पुलकित हो उठती ।

अनेक गूढ एव विज्ञता भरे प्रश्न देवियां महारानी मरुदेवी से पूछती और मरुदेवी उन प्रश्नो का उत्तर सक्षिप्त मे सार गर्भित शब्दो से देती । जिन्हे सुनकर देवियां भी चकित रह जाती ।

प्रत्येक दिन नया आयोजन, देविया प्रस्तुत करती-जिसने रानी नवीन नवीन मोदभरी मुस्कराहट उपलब्ध कर पाती । कभी जलक्रीडा का आयोजन होता-तो सभी महारानी के साथ जल से भरे कुण्ड मे नहाती । शीतल, स्वच्छ जल का स्पर्श ज्योही अग-प्रत्यग से होता त्यो ही रानी सिहर उठती ।

कभी सगीत का आयोजन होता तो देवियाँ, वीणा सितार, मृदग, झांझर आदि को सप्तस्वरो मे से क्रम से बजा बजाकर मगल गान गाती । नाचती और हाव भाव प्रदर्शित करती ।

कभी हास्य रस का आयोजन होता तो देवियाँ अनेक बातें हास्य भरी कहती जिससे रानी हसती-हसती लोट पोट हो जाती थी और कहती-'बस-बस' अब रहने दो • मेरा तो पेट भी हसते हसते थकता सा जा रहा है ।'

कभी प्रश्नोत्तरो का आयोजन होता तो देविया प्रश्न पूछती और मरुदेवी उनका उत्तर देती ।

जैसे —

प्रश्न—क पाठ्योऽक्षरच्युत. ?

उत्तर—श्लोक पाठ्योक्षरच्युत ।

प्रश्न—मधुर शब्द करने वाला कौन है ?

उत्तर—केका । अर्थात-मयूर ।

प्रश्न—उत्तम गन्ध कौन धारण करता है ?

उत्तर—केतकी ।

प्रश्न—मधुर आलाप किसका ?

उत्तर—कोयल का ।

प्रश्न—छोड देने योग्य सहवास किसका ?

उत्तर—क्रोधी का ।

प्रश्न—हे माता ! सक्षिप्त और डेढ अक्षरो मे प्रत्येक का उत्तर दीजिये "आपके गर्भ मे कौन निवास करता है?

उत्तर—तुक् । (पुत्र)

प्रश्न—आपके पास क्या नही है ?

उत्तर—शुक् । (शोक)

प्रश्न—बहुत खाने वाले को कौन मारता है ?

उत्तर—रुक् । (रोग)

प्रश्न—हे रानी हमारे तीन प्रश्नो का उत्तर दो दो अक्षरो मे ...जिए पर प्रत्येक उत्तर के शब्द का अन्तिम अर्थात् दूसरा अक्षर ...' होना चाहिए। हमारे तीन प्रश्न हैं...

(१) भोजन मे रुचि बढाने वाला कौन ?

(२) गहरा जलाशय कौन ?

(३) आपके पति कौन ?

उत्तर—सूप, कूप, भूप । (अर्थात् दाल, कुआ और राजा)

प्रश्न—एक देवी ने अपने प्रश्नो को निरुत्तर होने वाला जान-...र पूछा हे माता मेरे भी तीन प्रश्नो का उत्तर दीजिए। पर याद ...खिये प्रश्न का उत्तर तीन अक्षरो मे हो और अन्तिम अक्षर 'ल' ...ो ।

(१) अनाज मे से कौन सी वस्तु छोड दी जाती है ?

(२) घडा कौन बनाता है ?

(६) कौन पापी चूहो को खा जाता है ?

उत्तर—रानी मुस्करा उठी । बोली—

पलाल, कुलाल और बिडाल । अर्थात् (भूसा, कुम्हार और बिलाव)

एक देवी जो अपने आपको महान् विद्वता से भरी पूरी मानती थी उसने (यह सोचकर कि रानी मेरे प्रश्न का उत्तर कभी भी नही दे सकेगी) तभी प्रश्न किया। उसने पूछा ' हे रानी, कृपया मेरे तीन प्रश्नो का उत्तर एक ही वाक्य मे दीजिये। मेरे तीन प्रश्न इस प्रकार हैं —

(१) आपके शरीर मे गम्भीर क्या है ?

(२) आपके पति की भुजाए कहाँ तक लम्बी हैं ?

(३) कैसी और किस जगह पर अवगाहन करना योग्य है ?

उत्तर — रानी ने उपरोक्त तीनो प्रश्न सुने और विहसती हुई उत्तर देने लगी। एक ही वाक्य मे—

'नाभिराजानुगाधिक'

उपरोक्त उत्तर को सुनकर देवी चकित रह गई। पुन पूछा—कृपया इनका स्पष्टीकरण दीजिएगा। रानी ने इनकी व्याख्या करते हुए बताया—

नाभि, आजानु, गाधि-क, नाभिराजानुगा-अधिक। अर्थात्-शरीर मे गम्भीर 'नाभि' है। महाराज नाभि की भुजाए आजानु (घुटनो तक) हैं। गाधि अर्थात् कम गहरे, क अर्थात् जल मे अवगहन योग्य है।

इस प्रकार विभिन्न और ज्ञान वर्द्धक, रोचक प्रश्नो को पूछती हुई देवियां समय का सदुपयोग कर रही थी।

२—संसार के सृजन हार का जन्म

अधकार को विलीन करता हुआ प्राची के आचल मे से दिवाकर प्रकट होने जा रहा था। चारो दिशाये गुलाब के फूल की तरह खिल उठी थी। रग-बिरगी, हल्की भारी, सुनहली किरणो से सारी दिशायें शरमाती सी मुस्करा उठी थी। आज हर प्राणी प्रसन्नता से भरा दिखाई दे रहा था। गगन मे पक्षी मौज की उडान ले रहे थे। पवन, मन्द, सुगन्ध, शीतलता के साथ कौने-कौने मे आ जा रही थी।

रानी मरूदेवी अपने ही कक्ष मे शयन कर रही थी। देवियां सिरहाने, पैरो की ओर, तथा अगल बगल मे बैठी हुई थी। सभी प्रसन्न और मोद भरी थी।

महाराज नाभि, अपने दरबार मे मन्त्रियो, सभासदो से प्रभात कालीन सभा मे बैठे चर्चायें कर रहे थे। तभी · · हाँ हाँ तभी ध्वजाये लहरा उठी, मन्दिरो मे अनायास ही घन्टे घडियाल बजने लगे। शख नाद गूंजने लगे जयजयकार होने लगी। सभासद प्रसन्नता से भरे-पर-आश्चर्यान्वित हो एक दूसरे की ओर देख रहे थे। नाभिराज कुछ कहने ही जा रहे थे कि एक देवी ने पायल की मधुर ध्वनि के साथ प्रवेश किया और प्रसन्नता के सागर से छलकी हुई कहने लगी—

"भगवान ऋषभदेव ने अवतार ले लिया है?"

अरे! सब उठ खडे हुए। महाराजा नाभि ने अपना भडार खोल दिया। दान दिया जाने लगा। आज सारी अयोध्या का कन

कन सजाया जाने लगा। मगलगीत, नृत्य, होने लगे। हर ओर खुशिय नाचने लगी। जय! जय! होने लगी।

उधर स्वर्ग मे भी भागदौड मच गई। बिना बजायें बजे बजते देख, अपने सिंहासन को हिलता देख, इन्द्र ने जान लिया कि भगवान ऋषभदेव ने जन्म ले लिया है। पूरे साज सज्जा के साथ, अपने सभी परिवार के साथ विशाल और भव्य ऐरावत हाथी पर विराजमान हो इन्द्र अयोध्या आया। सारी अयोध्या नगरी पर रत्न बरसाए गए। इन्द्र ने ऐरावत हाथी सहित नगरी की तीन प्रदक्षिणा दी। पश्चात् राजभवन के समीप ऐरावत को रोका।

इन्द्राणी, ऐरावत पर से उतर कर सीधी रानी मरुदेवी के प्रसव कक्ष मे गई। बालक माता की बगल मे लेटा हुआ था। प्रसन्न और विकसित पुष्प सा! इन्द्राणी धन्य हो उठी। उसने बालक को उठाना चाहा पर यह सोचकर कि माता दुःख मानेगी, इन्द्राणी ने मायामयी नींद से रानी को सुलाकर और एक माया मयी बालक वैसा ही बनाकर, बालक ऋषभदेव की जगह सुलाकर बालक ऋषभदेव को अपनी गोदी मे उठा लिया।

इन्द्राणी बालक को बारम्बार निरखे जा रही थी। उसकी वह निरखन की भूख मिटना ही नही चाह रही थी। फिर भी इन्द्र की आज्ञा को ध्यान में रख वह बालक को बाहर ले आई और महाराज इन्द्र को सौंप दिया।

इन्द्र ने बालक को निरखा। बड़े प्रसन्न हुये। अपने कन्धे पर विराजमान करके सभी परिवार सहित पाण्डुकवन की ओर चल पडे पाण्डुक वन मे रमणीक पाण्डुकशिला पर पूर्व की ओर मुख करके बालक को अत्युत्तम सिंहासन पर विराजमान किया और उत्साह उमग, जय जय कारों के साथ जन्माभिषेक किया।

और नीर से स्नवन करने के पश्चात् इन्द्राणी ने बालक क वस्त्राभूषण पहनाये। बालक ऋषभदेव अनुपम सौन्दर्य की साक्षा

मूर्ति लग रहे थे। इन्द्र ने जो बालक को देखा तो उसके नयन निरखते ही रह गये। वाह!वाह! क्या अनुपम सौन्दर्य है ? क्या शरीर है ? क्या तेज है ? इन्द्र अवाक रह गया। एक से,नही दो से नही, इन्द्र को बालक के सौन्दर्य-रस का पान करने के लिये हजार नेत्र बनाने पडे। बडी प्रसन्नता के साथ इन्द्र ने इन्द्राणी के साथ ताण्डव नृत्य किया। विविध प्रकार के वाद्य बजने लगे। देवाँगनाये मगल गीत गाने लगी और सारा गगन मण्डल जय जय कारो की नाद से गू ज उठा।

मँगल कार्य हो चुकने के पश्चात् इन्द्र वापिस उसी ठाट-बाट के साथ अयोध्या आया। बालक को इन्द्राणी ने मा की गोद मे लिटाया। माया मई बालक लुप्त हुआ। ईन्द्र और इन्द्राणी ने माता पिता की पूजा की। बालक के साथ रहने के लिये अनेक देव देविया छोडकर ईन्द्र ने प्रस्थान किया।

बालक ऋषभदेव दोज के चद्रमा की भाति वृद्धि को प्राप्त होने लगे। देवगण उनके ही समान बालक होकर उनके साथ खेलने लगे। देवाँगनाये बालक की परियचर्या करने लगी।

"वाह!वाह! क्या आनन्द का स्रोत है ?"

'कहा ?"

"उधर देखो उधर…… ……"

"अरे ! "

बालक ऋषभ बालकोपयोगी क्रीडाये कर रहे थे और मा मरूदेवी तथा पिता नाभि फूले न समा रहे थे। हाथो हाथ रहने वाले बालक ऋषभदेव फुदक रहे थे।

माता मरुदेवी के आँगन मे धूम सी मची हुई है। बधाई गाने वालो का ताता सा लग रहा है। राजा नाभि भी प्रत्येक प्रकार के मगल उत्सवो मे भाग ले रहे थे। आज अयोध्या का ही नही, अपितु विश्वभर का बच्चा बच्चा प्रसन्नता से नाच रहा था।

क्यो ???

क्योकि आज कर्मभूमि के सृष्टा, धर्मभूमि के महान उपदेष्टा सृष्टि के आदि पुरुष बाबा आदम, सृष्टि सृजक ब्रह्मा और विकार कालुषता तथा भूख प्यास की भयकर बिमारी के संहारक भगवान शकर ने जन्म जो लिया है।

भूले भटके असभ्य, अनभिज्ञ, मानव को सही मार्ग प्रदर्शक आज राजा नाभि के घर रानी मरुदेवी के आगन मे खेल रहे है।

ओज भरे, और ज्ञानभरे बालक ऋषभ को निरखने, देखने, दर्शन करने को भीड उमड रही है। चारो ओर नृत्य हो रहा है। आनन्द मगल की धूम छा रही है।

महान् पुण्यशाली भगवान ऋषभदेव के जन्म पर जो विशेषता होनी चाहिये थी हुई। पुण्य का फल होता ही ऐसा है। पूर्वभव के सचित पुण्य कर्म आज प्रकट हो रहे थे।

× × ×

समय चक्र सदैव चलता ही रहता है। और उसके चलते रहने के बीच अनेक परिवर्तन आते रहते है। उन परिवर्तनो की पृष्ठभूमि पर समय चक्र रुकता नही अपितु चलता ही रहता है।

पौराणिक आधार के अनुसार पृथ्वी अनादि से है इसका रचियता कोई नही। काल का परिवर्तन पृथ्वी पर होता रहा है और उस काल के परिवर्तन मे पृथ्वी ने भी परिवर्तन मे भाग लिया है।

जिस प्रकार कृष्णपक्ष के पश्चात् शुक्लपक्ष और शुक्लपक्ष के पश्चात् कृष्ण पक्ष नियम से आता है। ठीक वैसे ही काल का चक्र भी सुखद और दुखद नियम से चलता है।

द्विभेद काल का चक्र छह प्रकार का होता है। यथा -पहला- सुखमा सुखमा। दूसरा सुखमा। तीसरा सुखमा दुखमा। चौथा दुखमा सुखमा। पाँचवाँ दुखमा और छठा दुखमा दुखमा। इसप्रकार छठा कालदु खमा दु खमा व्यतीत होने पर प्रलय का ताण्डव नृत्य

नियम से होता है। और प्रथम काल चक्र का रुख विपरीत हो उठता है। जिसके पश्चात् द्वितीय काल चक्र चलता है जिसमे पहला दुखमा दुखमा। दूसरा दुखमा। तीसरा दुखमा सुखमा। चौथा सुखमा दुखमा। पाचवा सुखमा और छठा सुखमा सुखमा।

प्रथम प्रकार का परिवर्तन अवसर्पिणी काल का है जिसमे प्रथम से छठे तक अवनति ही अवनति होती जाती है। दूसरे प्रकार का परिवतन उत्सर्पिणी काल का है जिसमे उन्नति ही उन्नति होती जाती है।

इस समय जो काल चक्र अपने परिवर्त्तन के साथ चल रहा हे वह अवसर्पिणी काल का है। अर्थात् पतन का काल। इस समय अवसर्पिणी काल का पाँचवा परिवर्तन 'दुखमा' चल रहा है। अवसर्पिणी काल के परिवर्तन मे आध्यात्मिक कला का ज्यो ज्यो परिवर्तन आगे बढता जाता है त्यो त्यो पतन होता जाता है।

पौराणिक तथ्यो के आधार पर इस अवसर्पिणी काल के प्रथम समय मे पृथ्वी पर भोग भूमि की रचना थी। अर्थात् कल्प-वृक्ष होते थे और प्राणी अपनी भोग्य सामग्री उन्ही से उपलब्ध कर लेते थे। उस वक्त ना द्वेष था और ना मोह। क्योकि सभी को समान रुप से मन चाही वस्तु मिल जाती थी।

नर और नारी की आयु बहुत होती थी। जब उनकी आयु नो माह की शेष रहती थी तब हो नारी के गर्भ रहता था। ज्यो ही सतान उत्पन्न हुई कि नर और नारी की आयु समाप्त हो जाती थी। उत्पन्न सतान युगल (नर-नारी) होती थी। उनचास दिन मे दोनो जवान हो जाते और फिर अपना समय व्यतीत करते। इस प्रकार यह क्रम चलता रहा। उस वक्त ना चन्द्रमा था और ना सूर्य। ना कीचड था और ना बादल (घटा) ना भयानक था और ना तूफान।

काल चक्र आगे बढा। प्रथम से द्वितीय और द्वितीय से तृतीय।

तृतीय काल अर्थात् सुखमा दुखमा के प्रारम्भ होते ही कल्पवृक्ष जो दस प्रकार के होते थे (मद्याङ्ग, तूर्याङ्ग, विभूषाङ्ग, स्येगङ्ग, ज्योतिरङ्ग, दीपाङ्ग, गृहाङ्ग, भोजनाङ्ग, पात्राङ्ग और वस्त्राङ्ग) वे प्राय नष्ट से होने लगे। आयु, बल, घटने लगा।

परिवर्त्तन आगे आया। पौराणिक तथ्यो के आधार पर आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को सायकाल के समय मे अन्तरिक्ष के दोनो भाग मे अर्थात् पूर्व एव पश्चिम मे चमकते हुये दो गोलाकार वृत्त दिखाई दिये। दोनो ही पूर्ण थे। और दोनो की चमक समान सी थी। पूर्व वाला गोलाकार चन्द्रमा एव पश्चिम वाला गोलाकार सूर्य निर्धारित किया गया। रातदिन, पक्ष, मास आदि होने लगे।

भोगभूमि के नर नारी आश्चर्यान्वित एव भयभीत होने लगे। जो उपलब्धियाँ कल्पवृक्षो से सहज ही उन्हे मिल जाती थी अब वे दुर्लभ होने लगी त्यो त्यो कुलकरो ने जन्म लिया जिन्होने अपने अपने समय के अनुसार प्राणियो को और मानवो को राह दिखाई। यथा —

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति ने सूर्य और चद्रमा से भयभीत मानव का भय दूर कर दिया। द्वितीय कुलकर सन्मति ने गगन मडल पर चमकते तारो का रहस्य समझाया। तृतीय कुलकर क्षेमकर ने मानव कल्याण का पथ दर्शाया। चतुर्थ कुलकर क्षेमधर ने शाति पथ एव कार्य प्रदर्शित किया। पचम कुलकर सीमकर ने आर्य पुरुषो की सीमा नियत की। छठे कुलकर सीमधर ने कल्पवृक्षो की सीमा निश्चित की। सातवे कुलकर विमलवाहन ने हाथी, घोडे, ऊँट आदि पर सवारी करने का उपदेश दिया। आठवे कुलकर ने पुत्र का मुख देखने की परम्परा चलाई। अर्थात् इस समय मे माता पिता पुत्रजन्म के बाद मरते नहीं थे पर जीवित ही रहते थे।

समय और आगे बढा। परिवर्त्तन और परिवर्तित होने लगा तो नौवें कुलकर यशस्वान् हुये दसवें अभिचन्द्र ग्यारहवे चन्द्राभ

बारहवे मरुदेव तेरहवे प्रसेनजित और अत मे चौदहवे कुलकर नाभि-राज हुये। नाभिराज के समय मे पुत्र प्रसव पर होने वाले मल आदि का प्रादुर्भाव होने लगा था। इन चौदहवे कुलकर के समय मे मानव और भी पीडित था। अनविज्ञ एव अबोध था। जनसख्या भी विशेष हो चुकी थी। आवास, खानपान, पहनपहनाव, बोलचाल, रक्षा, शिक्षा आदि का अभाव हो रहा था।

जैसा मिला जहाँ मिला खालिया। जहाँ जगह मिली पड गये। सर्दी, गर्मी, सहते रहे। असभ्य वातावरण पनपने लगा। ऐसे समय मे भगवान वृषभदेव का जन्म हुआ।

३–गार्हस्थ परम्परा का अभ्युदय

बालक वृषभ, यौवन के उपवन मे अपना कदम रख रहे थे। सुडोल, गठीला, सुन्दर एव बलिष्ठ शरीर पर शौर्य, वीर्य और धैर्य की क्रान्ति चमक रही थी। देवगण जो उनके साथ अब तक रहे थे अपना रुप फीका जान–छूमन्तर हो गये थे।

वस्त्रा-भूषण धारण करने के पश्चात् जब युवक वृषभ दिखाई देते तो कामदेव स्वय ही लगते थे। युवावस्था के अनुपम एव विलक्षण तथ्य आप मे स्थित थे। युवक वृषभ की युवावस्था देख राजा नाभि और रानी मरुदेवी फूले न समाये।

राजा नाभि ने, स्वय विचारा—अब समय परिवर्त्तित हो चुका है परम्पराओ को जन्म लेने का अवसर आ गया है। मानव अपनी मानवता की खोज मे व्याकुल हो रहा है। ऐसे समय मे वृषभ को विवाह करना चाहिये। उन्हे परम्परायें डालनी चाहिये। ऐसा विचार कर के नाभिराज वहा पहुचे जहाँ 'वृषभ' अपने कक्ष मे अपने ही विचारो मे खो रहे थे।

वृषभ को आशीर्वाद देने के साथ ही महाराजा—वृषभ के बगल मे बैठ गये और बोले—

'सुनो !'

'जी • •••।'

'देखो, वैसे तो तुम महान् पुण्य-शाली हो, महान् हो, पर निमित्त कारण से मैं तुम्हारा पिता हूँ और इसीलिये मुझे कुछ कहने का साहस हुआ है।'

'आप आज ऐसी बाते क्यों कह रहे है। आप तो पूज्य है।

मैं तो आपका पुत्र हूँ। आज्ञा पालने वाला पुत्र ! आज्ञा कीजिये · · ·।'

'देखो पुत्र ! मैं जानता हूं कि तुम धर्मतीर्थ की स्थापना करोगे। दीक्षा लेकर मानव कल्याण की भूमिका स्थापित करोगे। पर जब तक वह काल लब्धि न आजाय तब तक तुम्हें इन अबोध मानव समाज को गार्हस्थ्य परम्परा बतानी ही होगी। तुम आदि पुरुष हो। इसलिये आपके कार्यो को देखकर अन्य लोग भी ऐसी ही प्रवृत्ति करेंगे · ।'

'आप तो महान् ज्ञानी है—वास्तविकता प्रकट कीजिये · ।'

'पुत्र वृषभ ! परम्परायें प्रकट करने के लिये तुम्हें विवाह करना चाहिये ! यह जो अनर्गल मिलाप—अबोध व अनभिज्ञ प्राणियो मे आज हो रहा है उसे पवित्रता के रंग मे रंगना चाहिये ?'

'जैसी आपकी आज्ञा !' युवक वृषभ ने पिता-नाभिराज की आज्ञा 'ओम्' कहकर स्वीकृत की।

वृषभ देव की स्वीकारता पाने पर राजा नाभि प्रसन्नता से नाच उठे। अब वे कन्या की खोज मे लग गये। मेरे ऐसे योग्य, कामदेव पुत्र के लिये–शीलवान रति समान कन्या चाहिये।

कच्छ और महाकच्छ की दो कन्यायें अति सुरुपा, सुडोल एव विचक्षण बुद्धि की थी ! राजा नाभि ने इन दोनो कन्याओं के साथ पुत्र वृषभ का विवाह सम्पन्न कराया।

आज अयोध्या इस प्रकार सज रही थी कि मानो कोई नव-नवेली दुल्हन सज-धज कर अपने पिया से मिलने आतुर हो रही हो। रानी मरुदेवी के तो पैर धरती पर लग ही नही रहे थे। अपने पुत्र की दो वधुओ को देख-देखकर आनन्द के सागर मे प्रसन्नता से फूली गोते लगा रही थी।

द्वार-द्वार पर मगल गान हो रहे थे। कामिनियाँ सजधज कर

नृत्य कर रही थी। आज सृष्टि के आदि मे नई परम्परा ने जन्म लिया था। वैवाहिक सम्बन्ध की स्थापना की गई थी। अत इस नवीनतम एव सर्व प्रथम आयोजन का स्वागत स्वर्ग के देव भी कर रहे थे। आज देवो ने इस ग्राहस्थ्य-परम्परा की आदि के प्रवर्त्तक भगवान वृषभ का नाम 'आदि नाथ' रखा।

आदिनाथ अपनी दोनो पत्नियो—जिनका नाम यशस्वती एव सुनन्दा था—के साथ अपना ग्राहस्थ-जीवन का आज प्रारम्भ कर रहे थे। स्वभाव से मधुर एव योवन सम्पन्न दोनो पत्नियाँ आदिनाथ को भोग्य प्रसाधनो से सन्तुष्ट कर रही थी।

शयन कक्ष, अत्यन्त सजा हुआ, और कर्पूरादिक सुगन्धि से भरपूर, प्राकृतिक प्रकाश, स्वच्छ पवन का सचार, एव अन्यन्य प्रसाधनो से सम्पन्न। जिसमे कोमल पुष्प शैया पर रानी यशस्वती अपने परमेश्वर आदिनाथ से साथ शयन कर रही थी। एक दूसरे कर स्पर्श आज मानसिक शारीरिक और भोगियक आनन्द प्रकट कर रहा था। दोनो ही मौज की लहरो मे तैर रहे थे। एक दूसरे मे लीन थे।

रात्री का पूर्वार्घ समाप्त हुआ। उत्तरार्व प्रारंम्भ हुआ। अर्धभाग का विसर्जन होने के पश्चात रात्री ने अपने अन्तिम प्रहर मे कदम रखा। रानी यशस्वती मीठी,मीठी नीद मे अपलक पलक खोले मुस्करा रही थी। आनन्द सागर मे डूबी रानी मस्ती से मौज भर रही थी।

स्वप्नो की दुनिया मे रानी का मन पहुंचा। उसने विशाल पृथ्वी देखी। पृथ्वी पर विशाल सुमेरू पर्वत देखा और सुमेरु पर्वत के समीप प्रभा सहित सूर्य और चन्द्रमा देखे। उसका मन और आगे वढा, एक सुन्दर तालाव, जिसमे हस किलोले कर रहे थे और जिसमे स्वच्छ शीतल जल लबालब भरा था—उसे देखा। तव ही मन और आगे वढा तो मन ने देखा कि समुद्र, जिसमे चचल

लहरें उठ रही थी, विशालता लिये हुये फैल रहा था।

तभी प्रभात मगल ध्वनित हो उठा। उषा चमक उठी और विभिन्न आवाजो का कलरव होने लगा दासिया मगल गीत गाने लगी और प्रभात-भेरी मधुर शहनाई के साथ गू ज उठी।

मधुर भेरी और शहनाई की मधुर आवाज ने रानी यशस्वती को स्वप्न लोक से बुलालिया। अब रानी के कानो में सभी ध्वनियाँ गूंजने लगी। रानी ने एक करवट बदली। शरीर अगडाई मे तडक उठा। अग मस्ती से फडक उठा। अलसाईसी, मुस्कराई सी, रानी शैया पर से उठी। दासियो ने चरण छूये और स्नान-कक्ष की ओर ले चली।

स्नान आदि से निवृत्त हो रानी यशस्वती पति-आदिनाथ के समीप पहुँची। चरण छुये और निकट बैठ गई। आदिनाथ ने यशस्वती को सरसरी दृष्टि से अवलोकन किया और मुस्करा उठे।

'आप मुझे देखकर क्यो मुस्करा रहे हैं?' रानी ने मन की उडान को बस मे करते हुये पूछा।

'लगता है—आज तुम विशेष प्रसन्न दिखाई दे रही हो। ' क्यो यह सच है ना?

'हा ' ''।'

'क्या इस प्रसन्नता का कारण मुझे भी कहोगी?'

'कारण तो मुझे भी नही मालूम। पर ऐसा लगता है ' ऐसा लगता है ' जैसे जैसे ' ।' रानी आगे न कह सकी।

'बोलो बोलो, जैसे' जैसे क्या?'

'स्वामिन्! आज मैंने कुछ स्वप्न देखे हैं। और उन स्वप्नो के देखने के बाद '।'

'मन उछाले मारने लगा है—क्यो यही बात है ना?'

'जी प्रभो!'

'अच्छा कहो तो, क्या स्वप्न थे वे ?'

रानी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में जो-जो स्वप्न देखे थे, सभी को अपने प्राणेश के समक्ष प्रकट किया। आदिनाथ ने बड़े ध्यान से सुना और बहुत ही प्रसन्न होते हुये बोले—

'खूब! बहुत खूब! रानी तुम धन्य हो गई।'

'अरे ?··क्यों ? ऐसी क्या बात है ?'

'रानी! तुम एक महान् सम्राट, महान् ज्ञानी, महान् कल्याण कारक, और महान् वैभवशाली पुत्र की माँ बनने वाली हो! और वह भी मात्र नो माह पश्चात् ही!'

'क्या!!! ······?' रानी का रोम-रोम नाच उठा। मन उड़ाने लेने लगा। फिर पूछने लगी—'हाँ तो प्रभो यह तो बताइए आपको कैसे मालूम हुआ ?'

'तुम्हारे स्वप्नों से!'

'ओह!'

और दोनों विहँस उठे! जब सास मरुदेवी को मालूम हुआ तो फूली न समाई। वह पूर्ण रूप से अपनी पुत्र-वधु की देखभाल करने लगी।

अरे रे रे सीढ़ियों पर यों न चढ़ो!· ठहरो क्या चाहिये तुम्हें? ··दासियों से कह दिया करो।

अरे रे रे यों न चलो ठोकर लग सकती है। सम्भल कर चलो!

अरे रे रे··यह बोझ क्यों। उठा रही हो? तुम समझती क्यों नहीं भोली रानी!

इस प्रकार अनेक देखभाल के साथ महारानी मरुदेवी उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी, जब कि उनके आंगन में उसका पौत्र खेलेगा।

× × × ×

आज चैत्र कृष्णा नवमी का दिन है। मीन लग्न है, ब्रह्मयोग है, धन राशि का चन्द्रमा है और उत्तराषाढ नक्षत्र है। आज सारी अयोध्या मे आनन्द मँगल हो रहा है। याचको को खुलकर दानदिया जा रहा है। द्वार-द्वार पर मधुर वाद्य बज रहे है। क्यो ???

क्यो कि आज रानी यशस्वती ने पुत्र प्रसव किया है। सुन्दर, सुडोल, बालक को देख-देखकर रानी यशस्वती अक से लगाये जा रही है। और महारानी मरूदेवी ?

महारानी मरूदेवी तो आज खुले मन से दान कर रही है। पौत्र की मगल कामनाये चाह रही है। और फूली-फूली नाच रही है।

भगवान आदिनाथ ने जान लिया कि यह पुत्र ही पृथ्वी का प्रथम सम्राट होगा और यही पृथ्वी का भरण पोषण करेगा। अत इसका नाम 'भरत रखा।

भरत बालक अब दोज के चन्द्रमा की भाँति वृद्धि को प्राप्त होने लगा। परम्परा को जन्म देने वाले आदिनाथ ने बालक के सभी सस्कार कराये यथा नामसस्कार मुंडन सस्कार अन्नप्राशन सस्कार उपनयन सस्कार और शिक्षा सस्कार।

भरत, शिक्षा मे अग्रसर था। स्वय आदिनाथ ने अपने पुत्र भरत को सभी शिक्षाये दी थी, यथा—कला, युद्ध, प्रशासनिक, व्यवहारिक, एव लोक नीति, भरत ने अपने पूर्व पुण्योदय से लगन के साथ सर्व विद्याये सीखी।

समयान्तर पर रानी यशस्वती के अन्य निन्यानवें पुत्र तथा एक पुत्री 'ब्राह्मी' भी हुये जिन्हे देख-देख कर सभी प्रसन्न हो रहे थे।

× × × ×

द्वितीय रानी सुनन्दा के महल में छम-छमा-छम हो रही है। आदिनाथ-मोद-भरे, प्रसन्नता के साथ रानी सुनन्दा सहित नृत्य-कियों का मन मोहक नृत्य देख रहे हैं ? सुनन्दा, आदिनाथ के निकट अपने आप में सिकुडि हुई उमग की तरग में मौज ले रही थी।

तभी मरुदेवी ने प्रवेश किया। नृत्य रुक गया! आदिनाथ और सुनन्दा ने पैर छुये और माँ मरुदेवी ने आशीर्वाद दिया। कुछ नम्रता से भरे हुये अदिनाथ यहाँ से प्रस्थान कर गये। मा मरुदेवी उच्चासन पर विराज गई। एकाएक मरुदेवी की दृष्टि सुनन्दा के चेहरे पर जाकर रुक गई। सुनन्दा का हृदय-तार छनछना उठा।

'बेटी सुनन्दा!'

'जी माताजी ····।'

'क्या, तुम मुझ से कुछ छिपा रही हो ?'

'जी · नही तो नही तो···।'

"नही! नही! अवश्य तुम छिपा रही हो। देखो बेटी! इस अवस्था में कुछ बात छिपाना हानि कारक हो जाती है। क्या तुम्हे कुछ माह ····· ?'

'जी ! ! !···आँ··· · हाँ ! हा ! आपने ठीक जाना है··· ··· ठीक ही जाना है ··।' और रानी सुनन्दा अपने आपमे शरमा गई।

'अच्छा यह तो बताओ तुम्हारा मन क्या कह रहा है ·· मेरा तात्पर्य यह है कि कोई ईच्छा · कोई कामना · कोई दोहला ?'

'जी ! · हाँ ··मेरा मन ·मेरा मन कर रहा है कि मैं तपस्या करु, घमण्डियो का गर्व चूर करु और अशिक्षितो को शिक्षा दूं ! पर ··· ।'

'धन्यवाद !'

'जी ! ! !…… !'

'बेटी ! तू बडी भाग्य शालिनी है। तेरी होने वाली सन्तान सत्यत्त ऐसी ही होगी जैसी तेरी ईच्छाये है।

'जी ! ! ! …… और सुनन्दा शर्म की मारी सास के अक से जा लगी।'

महाराज नाभि ने भी सुना तो फूले न समाये। सारी जनता ने खुशियाँ मनाई। आदि नाथ भी आज प्रसन्न हो रहे थे। क्योकि आज प्रभात मे ऊषा की प्रथम किरण के साथ रानी सुनन्दा की कुक्षी से पुत्र-रत्न का जन्म हुआ था।

गरिष्ठ गठा हुआ शरीर, सुडोल लम्बी बाहुये, और तेज से पूर्ण चहरा। छोटे से शिशु को यो देखकर नाम सस्कार पर नाम बाहुवली रखा।

बाहुवली का बल और विशाल शरीर शैशव-अवस्था मे भी आश्चर्य कारी लग रहा था। अत यह अनुमान लगाया कि युवा होने पर बाहुबली--महान् बली, महान् शरीरी, और महान् कामदेव होगे। आदिनाथ ने अपने पुत्र का रूप, शरीर, भुजाये देखी तो देखते ही रह गये।

समयान्त पर सुनन्दा ने एक कन्या रत्न को भी जन्म दिया। जिसका नाम सुन्दरी रखा गया।

अब राजा नाभि और रानी मरूदेवी एक सौ एक पौत्र और दो पौत्रियो के दादा दादी थे। भगवान आदिनाथ ने चारो की शिक्षा आदि का भार अपने ऊपर लिया। दोनो प्रमुख पुत्र भरत और बाहुबली, विद्या, कला, दीप्ति, कान्ति और सुन्दरता मे समान लग रहे थे।

शारिरिक गठन की दृष्टि से बाहुबली का शरीर विशेष गठीला और विशाल था। जबकि भरत का शरीर सामान्य बल-शाली के समान था।

४—संसार की संसृति और क्षणभंगुरता

'मान्यवर पिता जी को सादर प्रणाम !'

'अरे रे रे ! ब्राह्मी, सुन्दरी !... आओ · आओ !'

भगवान आदिनाथ अपने चिन्तन कक्ष मे विराजे हुये स्वाभाविक ज्ञान के द्वारा चिन्तन कर रहे थे—तभी दोनों पुत्रियो ने प्रवेश किया। नम्रता से नम्रीभूत दोनो कन्याओ ने अपने पूज्य पिता को सादर प्रणाम किया और दोनो, पूज्य पिता जी के अगल-बगल अर्थात् एक दाये हाथ की ओर तथा दूसरी बांये हाथ की ओर शिर झुकाये बैठ गई।

भगवान आदिनाथ की दृष्टि दोनो के मुख कमल पर जा टिकी और प्रसन्नता की मुस्कराहट की फुँहार बरस पड़ी। बोले—

'अब तो सयानी हो गई हो।'

'जी ! ! ! ...!' दोनो एक साथ चौंक उठी।

'देखो !' अब तुम्हारी आयु विद्या ग्रहण करने की हो गई है। विद्या बिना संसार मे मानव तन अकार्य हो जाता है। विद्या ही तो मानव तन की सार्थकता है। विद्या ही ने तो आत्मा परमात्मा बनती है। विद्या ही से तो सांसारिक मनोरथ पूर्ण होते हैं। विद्या से ही तो सर्वोच्च पद की प्राप्ति होती है। अत. तुम्हारा यही काल विद्या ग्रहण करने का है। प्रमाद को त्यागो और सुसंस्कार डालो।

सुनकर दोनो पुत्रियाँ अति नम्र हो उठी साथ ही विद्या ध्यान हेतु उत्सुक भी हो उठी।

भगवान आदिनाथ ने अपने दाहिने हाथ से वर्ण माला का अध्ययन 'ब्राह्मी' को कराया और बाये हाथ से इकाई दहाई– गणित का अध्ययन सुन्दरी को कराया।

सर्वप्रथम दोनो को "नम सिद्धेभ्य" का मगलाचरण याद कराया और फिर शिक्षा की प्राथमिक परम्परा को जन्म दिया।

ब्राह्मी ने वर्णमाला के विभिन्न पदो का पूर्ण रूपेण अध्ययन किया और सुन्दरी ने गणितमाला के विभिन्न अध्यायो का मनन किया। स्वाभाविक बोध और भगवान आदि नाथ का आशीर्वाद दोनो की सफलता से दोनो पुत्रियो ने अपार श्रुति का अभ्यास कर लिया।

उधर पृथ्वी का मानव क्रियाओ से अनविज्ञ हो रहा था। कल्पवृक्ष भी रहने से जो भी मिला भूख मिटाने के लिये–खा लिया गया। ना अन्न, ना फल और ना कार्य। मानव असभ्य सा लग रहा था।

भगवान आदिनाथ ने देखा मानव नगा है, बाल बढे हुये हैं, शरीर काला है, भूखा है, असभ्य है, मासाहारी भी होने लग गया है। ना मकान, ना परिवार, और ना मोह। ना प्रेम, ना स्नेह और ना वात्सल्य। मानव अबोध है, अनविज्ञ है।

कर्मभूमि का मानव अपने प्रथम और नये चरण में होता भी कैसा? कौन बोध दे? कौन राह दिखाये। कौन सृजन करे? कौन क्रिया बताये।

आदिनाथ ने सभी मानवो को बुलाया और उनकी ओर अपनी एक मुस्कराहट की फुंहार डाली' मानव इस मुस्कराहट से चाकत सा, चित्रसा, रह गया।

भगवान आदिनाथ ने मानव की अनभिज्ञता को देखकर अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा सृष्टि की रचना का विचार किया। जब विशेष मार्ग होना होता ही है तो स्वर्ग मे देव भी उत्सुक हो जाते हैं अत सृष्टि-रचना मे सहयोग देने के लिये इन्द्र और कुबेर भी आदिनाथ की सेवा मे आ खड़े हुये।

भगवान आदिनाथ ने सर्वप्रथम ग्राम की रचना का उपदेश दिया, फिर नगर, फिर राजधानी और फिर राजा का उपदेश दिया। वैसी ही रचना भी होने लगी।

भगवान आदिनाथ ने मानव को असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छह कार्य मानव की आजीविका के लये बताये। और प्रत्येक की क्रियाओ से उन्हे बोधित किया।

उन्होने मानव को क्रिया दृष्टि से तीन भागो मे बाट दिया। यथा—

(१) अपने ग्राम, अपने नगर एव अपने साथी की रक्षा कर ार देकर मानव को 'क्षत्रिय' नाम दिया ।

(२) खेती, व्यापार, तथा पशुपालन का भार देकर मानव को 'वैश्य' नाम दिया ।

।३) श्रमिक तथा निर्माण कार्य करने वाले मानव को शूद्र नाम दिया।

इसमे साथ ही आदिनाथ ने बताया कि तीनो एक दूसरे के पूरक हैं। साथी हैं। तथा स्नेही है। जिस समय भी एक दूसरे के प्रति घृणा जन्म लेगी मानव का पतन होता जायेगा।

आदिनाथ ने तीनो वर्ग को समझाया कि देखो—

(१) तलवार, तीर आदि शस्त्र धारण करके रक्षा करना, सेवा करना, यह असि कर्म है।

(२) लिखकर आजीविका करना मषि कर्म है।

(३) जमीन जोतना, उसमे बीज डालकर अन्न पैदा करना, फल फूल पैदा करना, कृषि कर्म है।

(४) अध्ययन करना, कराना, उपदेश देकर शिक्षा देना आदि विद्या कर्म है।

(५) लेन देन व्यापारादिक करना वाणिज्य कर्म है।

और

(६) चित्र बनाना, लकडी, पत्थर मिट्टी के बर्तन बनाना आदि वस्तुये बनाना शिल्प कम है।

भगवान आदिनाथ की प्रत्येक बात मानव समुह एकाग्र हो सुन रहा था और अपने आपमे एक नया उत्साह अनुभव कर रहा था।

स्वय भगवान आदिनाथ ने मानव को सभी कर्म करके दिखाए तो मानव खुशी से नाच उठा। चारो ओर भगवान आदिनाथ की

जय जयकार गूज उठी।

शृष्टि की रचना करके आदिनाथ ब्रह्मा कहलाने लगे।

आज पृथ्वीपर नया जीवन नया उत्साह अपना रग विखेर रहा था। मानव ही नही पशु भी आज नाच रहे थे। क्योकि कुछ ही समयान्तर पर खेत लहलहाने लगे, फुल खिल उठे, मयूर नाच उठे, चिड़िया चहचहा उठी और मानव सभ्य बन उठा। आज नारी और नर ने अपना अपना व्यक्तित्व पहचाना था। आज एक दूसरे से स्नेह करने लगा था। प्रम करने लगा था। मोह करने लगा था। अनविज्ञ मानव अब विज्ञ होने की सोपान पर चढने जा रहा था।

महाराजा नाभि अत्यन्त प्रसन्न थे। महारानी मरुदेवी धन्य हो रही थी और यशस्वती तथा सुनन्दा ?... वे तो गौरव से भरी जा रही थी। पुत्र भरत और बाहुवली अपने पिता से पूर्ण शिक्षा ले रहे थे। ब्राह्मी और सुन्दरी को अपने सस्कारो को प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो रहा था।

× × × ×

"प्रजापति महाराज आदिनाथ की जय।"

जय जय कारो से अयोध्या का कौना-कौना गूज उठा। सभी देशो के मनोनीत राजागण भी खुशियाँ मना रहे थे। विशाल मण्डप मे विशाल मच पर राजा नाभि एव अन्य माननीय राजा गण बैठे दिखाई दे रहे है। सिहासन खाली दिखलाई दे रहा है। तभी भगवान आदिनाथ सजे धजे से मण्डप मे आए। जिन्हें देख-कर पुन जय नारा गू ज उठा।

छम-छम छम की झन्कारे छम छम। उठी! सारा मण्डप नृत्य की मोहक कला ने प्रभावित हो उठा। देवगण पुष्प की, रत्नो की वर्षा कर करके दुन्दुभी वजा रहे थे। तभी नाभि राज उठे और आदि नाथ को दोनो हाथो से थामे सिहासन पर

विठाया। साथ ही विशेष सूचना के साथ राज्याभिषेक करते हुये साम्राज्य पद से विभूषित किया ! फिर जय नारा गूज उठा।

भगवान आदिनाथ ने श्रृष्टि का भार सम्हाला और प्रजा मे रच पच गए। मानव को और भी सानिध्य और सहयोग आदिनाथ से मिलने लगा।

हाँ ! हाँ ! एकदिन ब्राह्मी और सुन्दरी दोनो युवा पुत्रिया वहा पहुची जहाँ प्रजापति आदिनाथ अपने साम्राज्य कक्ष मे विराज रहे थे। दोनो ने दूर से ही देखा और आपस मे फुसफुसाने लगी।

'पिताजी महान हैं।"

"पिताजी सर्व पूज्य है।"

"पिताजी से बडा भूमण्डल पर और कोई नही।"

"सब पिताजी के आगे आकर झुकते हैं।"

"हा ! पिताजी किसी के आगे भी नही झुकते।"

"क्या कहा ?"

"हाँ ! हाँ ! ! मैंने सत्य कहा है।"

"झूठी।"

"क्यो ? ??।"

"ऐसा हो ही नही सकता।"

"चल पिताजी से ही जाकर पूछले।"

"हा ! हा ! पूछले ! कौन मना करता है।"

और दोनो जा पहुँची अपने पिताजी के पास। आदिनाथ भगवान ने दोनो को देखा। उनके चेहरो से प्रश्न की गंध झलक रही थी।

भगवान आदिनाथ ने कुछ समय पश्चात पूछ ही लिया।

"क्या बात है ?"

"जी हा ! जी कुछ नहीं।"

"कहो ! कहो ! रुको नहीं।"

"जी यह सुन्दरी कह रही थी ··· कह रही थी··· ··"

"क्या कह रही थी ?"

"कि आप से बडा कोई नही। आप किसी के भी आगे नही झुकते · ···"

"ओह ! तो · तुम क्या कहती हो ?"

"जी·· जी·· मैं · हा · नही ·· ।"

"भोली कही की।" प्यार से भगवान आदिनाथ ने दोनो के सिर पर हाथ फेरा। फिर बोले —

"बेटियो का पिता जरूर झुकता है।"

"किसके आगे ?" दोनो पुत्रियो ने एक साथ पूछा।

"अपनी बेटियो के पति के आगे।"

"अरे ! ! ? दोनो चौक उठी।"

"क्यो ! चौक क्यो गई ? यह सत्य है। ऐसा होता ही है।" कहकर आदिनाथ ने अपनी पुत्रियो के चेहरो की ओर देखा। दोनो विचार मग्न थी। खोई हुई थी अपने आप मे और समझ रही थी नारी के व्यक्तित्व को तभी आदिनाथ भगवान ने पुन पूछा "कैसे विचारो मे गोता लगा रही हो।"

"जी ! · ओह !" दोनो ने नजरे झुकाली।

"बोलो ! बोलो !"

"हम विवाह नही करेंगी ?"

"क्यो ?"

"जी ! हमारे कारण आपका पूज्यपना · ···"

"भोली कही की।" बीच मे ही भगवान आदिनाथ मुस्करा

उठे। बोले''''''उठो। अपना अध्ययन करो।"

दोनो अपने आप दृढ प्रतिज्ञ हो मस्तक झुकाकर चली गई। एक जगह दोनो जा बैठी''''''

"अब क्या होगा ?"

"क्यो ?"

"क्या हमारा विवाह होगा ही ?"

"नही तो।"

"यह नही तो, नही तो, क्या लगा रखी है। गम्भीर होकर कुछ सोचती तो है नही।"

"सोचनो लिया।"

"क्या ?

"कि हम विवाह नही करेंगे ?"

"तो ? ? ?"

'हम तो दीक्षा लेगी दीक्षा। समझी।"

'अरे !!!' प्रसन्नता से नाच उठी।

'हा ! 'आज इस कर्मयुग मे हमारी आवश्यकता प्रत्येक नारी को है। प्रत्येक नर को है। हम शिक्षा, नागरी और इकाई गणित तभी सिखा सकेगी जबकि घर घर, द्वार द्वार जाकर मानव मे सस्कार डालेगी।

'अरे हा ! यह अच्छा हुआ।'

'तो पक्का।'

'सत्यत पक्का।

और दोनो का मन प्रसन्नता से नाच उठा।

◎ ● ◎

अयोध्या प्रदेश के नाभिनुत ऋषभदेव (आदिनाथ) ने पाषाण कालीन प्रकृत्याश्रित असभ्य युग का अन्त करके ज्ञान-विज्ञान सयुक्त कर्म प्रधान मानवी-सभ्यता का भूतल पर सर्वप्रथम 'श्रीग नम किया। अयोध्या से हस्तिनापुर पर्यन्त प्रदेश इस नवीन

सभ्यता का प्रधान केन्द्र था।

आदिनाथ ने राज्याभिषेक के पश्चात् राज्य व्यवस्था की, समाज सगठन किया और नागरिक सभ्यता के विकास के बीज बोए। कर्माश्रय से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप मे श्रम विभाजन का भी निर्देश किया। वे स्वय इक्ष्वाकु कहलाए इससे उन्ही से भारतीय क्षत्रियो के प्राचीनतम इक्ष्वाकु वश का प्रारम्भ हुआ।

आज प्रात से ही देश प्रदेश के राजागण आ रहे थे। उनके विश्राम की विशेष व्यवस्था की गई थी। एक विशाल और रमणीक महा मण्डल सजाया हुआ था। जिसमे बैठने की सुन्दर व्यवस्था की हुई थी। इस महा मण्डप मे प्रवेश करते ही ठीक सामने रमणीक व भव्य मच पर एक मणि कणो से सुसज्जित सिंहासन लगा हुआ है। मच के समक्ष द्वार तक खाली स्थान था, जहाँ सुन्दर मखमली सा कालीन बिछा हुआ है।

किनारो पर आजू बाजू पर दोनो ओर राजागण, एव समाज के बैठने की व्यवस्था है। जहाँ सभी सजे धजे से बैठे है। सभी की दृष्टि मे एक भव्य प्रतीक्षा की झलक है। मच का सिंहासन अभी खाली है। मात्र दो सेवक हाथ मे चवर लिए सिंहासन मे दाएँ बाएँ मत्र मुग्ध से खडे हैं।

तभी जयनाद गूजी। स्वागत वाद्य बजा। और अनेक आभूषणो से सुसज्जित भगवान आदिनाथ का प्रवेश हुआ। सभासद उठ खडे हुए और शिर झुकाकर अभिवादन किया। आदिनाथ सिंहासन पर विराजे और सभी को सकेत दिया कि अपने अपने स्थान पर बैठ जाएं।

'क्या होने वाला है आज ?' एक सभासद ने दूसरे से उत्सुकता लिये हुये पूछा।

'शायद आज कुछ विशेष आयोजन है।' दूसरे ने अनभिज्ञ सा उत्तर दिया।

'क्या आपको भी ज्ञात नही ?'

'नही तो !'

'कुछ भी नही ?'

'हाँ कुछ भी नही। मात्र इतना सा भान है कि आज विशेष आनन्ददायक आयोजन होने वाला है।'

'ओह ····।'

तभी··· ·

तभी मधुर वाद्य अपनी मन्द और मधुर ध्वनि मे बज उठे। सबने देखना चाहा कि यह आवाज कहाँ से मुखरित हो रही है, पर दिखाई किसी को भी नही दिया। तब सबके सामने एक रहस्य का वातावरण छा गया।

वीणा के तार बजे, तबला बोल उठा, मृदग गूज उठी, झाझर झन्ना उठी और सभा मण्डप मधुर वाद्य की ध्वनि तथा एक मीठी सुगन्धि की सुगन्ध से सुरभित हो उठा। सब साज की आवाज मे खोने लगे। सबके सिर ताल के साथ हिलने लगे। हथेली जाँघुओ पर थिरकने लगी।

तभी ·

तभी छम, छम, छम, की ध्वनि, सुनाई दी। छम छमा··· छम छम छम ! घुघरू की झंकार ने सबको चौका दिया। कहाँ किसके पाँव से बज रहे है ये घुघरू ? कौन बजा रहा है ? सब उत्सुक थे देखने को पर दिखाई ही नही दिया। घुघरू की ध्वनि मन्द से कुछ तेज, और तेज से कुछ और तेज होती जा रही है ज्यो-ज्यो तेज होती जा रही है त्यो-त्यो ही सभासद देखने को विशेष उत्सुक भी हो रहे है।

तभी ··· ·

हाँ तभी एक सुन्दर, सर्वांग सुन्दर, अति सुन्दर पन्नगी सी, मोहकती, गौरी सी, थिरकती हुई अप्सरा सभा मण्डप मे एक सुन्दर

मखमली से कालीन पर प्रकट हुई।

वाद्य तेज हो गये। नृत्य मोहक हो उठा। अप्सरा कभी इस कौने, कभी उस कौने, कभी ऊपर, कभी नीचे की ओर फुदकती हुई नृत्य कर रही थी। सभासद आनन्द और रहस्य के मिले जुले रँग मे मस्ती से झूम रहे थे।

"कौन है यह?"

"क्या मालूम?"

"कहाँ से आई है?"

"यह भी मालूम नही?"

"किसने बुलाया है इसको?"

"इसका भी अनुमान नही?"

"तो फिर . . ."

"देखे जाओ ... बीच मे मजा किरकिरा मत करो।

मनमोहक और आश्चर्य भरी नृत्य को देखकर सभी झूम रहे थे। भगवान आदिनाथ भी नृत्य की मोहकता मे वह उठे थे। अप्सरा तो अप्सरा ही थी। नाम था इसका निलाजना। इसका नृत्य देखने को तो स्वर्ग मे देवो की धूम लग रही थी

स्वर्ग मे इन्द्र की प्रथम अप्सरा। महान नृत्यिका। और महान् सौन्दर्य की देवी। जो आज पृथ्वी तल पर बसे मानवो को सुलभ हो रही थी।

वीणा और मृदग द्विगुण मे बज रहे थे। अर्थात ताल दुगनी हो उठी, फिर तिगुनी और चौगुनी। तबला इस पर भी ताल का साथ दे रहा था। और सभासदो के सिर भी उसी ताल मे हिल रहे थे। आदिनाथ भी उसी ताल मे खो रहे थे।

तभी ...

हाँ तभी। वीणा का तार टूट गया। तबला फट गया। मृदग ने उठी और निलाजना, देखते ही देखते अदृश्य हो गई। सबके

सिर हिलते-हिलते रुक गये। वातावरण रो उठा। सब आश्चर्य के रंग में रंगे हुये देखते के देखते ही रह गये।

'कहा गई अप्सरा ?'

"वाद्य क्यों रुक गये ?"

"नृत्य क्यों रुक गया ?"

"बुलाओ बुलाओ ' अप्सरा को बुलाओ।"

"उसका नृत्य और होने दो।"

"हम उसका नृत्य और देखेंगे।"

सभा मंडप शोर गुल से गूंज उठा। भगवान आदिनाथ ने भी पूछा, "कहाँ गई नृत्यिका ?'

तभी एक भव्य पुरुष आया। उसके आते ही सभामण्डप मे पुन, शान्ति छा गई। सब उस भव्य पुरुष की ओर देख रहे थे। वह भव्य पुरुष भगवान आदिनाथ के समक्ष हाथ जोडे खड़ा हो गया। भगवान आदि नाथ ने पुन पूछा

"कहाँ गई वह नृत्यिका ? और कौ वह ?"

तब उस भव्य पुरुष ने निवेदन किया "भगवान। [illegible]

"और इसीलिये आज देखते-देखते निलाजना मृत्यु को प्राप्त हो गई।"

"हा प्रभो।"

तभी

तभी एक नृत्यिका फिर प्रकट हुई। वैसी ही! वैसा ही नृत्य। वैसे ही वाद्य पर भगवान आदिनाथ उठ खडे हुए और बोले

"नृत्य रोक दो। अब यह छलावा और न करो।"

"क्यो भगवान्! क्यो रोक दूं नृत्य को?" आपको तो नृत्य देखना है ना ·· · मैं नृत्य ही तो दिखा रही हू ·· क्या मेरा नृत्य आपके मन को नही भाया · · क्या मै सुन्दर नही ? .. क्या मै मोहक नही ? ·· क्या मैं अप्सरा नही ? ·"

"हा! हा! तुम सब कुछ हो। पर वह क्षण! वह समय। वह दृश्य अब समाप्त हो चुका है। और जो क्षण, जो समय बचा है उसे यो समाप्त नही किया जा सकता।"

भगवान आदिनाथ सभा मण्डप से प्रस्थान कर गए। राजा महाराजा इस रहस्य से भीगे के भीगे ही रह गए।

५—वैराग्य विभूषित जीवन

शरीर की स्थिरता आयु पर आधारित है। ज्यों ज्यों आयु विशेष होती जाती है अर्थात् व्यतीत होती जाती है त्यों त्यों ही शरीर की कान्ति, शरीर का बल, और शरीर का शौर्य भी क्षीण होता जाता है। हां, आयु का पूर्वार्ध जब आगे बढ़ता है तो शरीर चमक जाता है, खिल उठता है, और तेज की आभा छा जाती है। ठीक वैसे ही जैसे सूर्य का प्रात से मध्यान्ह तक प्रभाव होता है।

और यही समय व्यक्ति के लिये होता है कि वह अपना व पर का हित कर सके। यही समय होता है जबकि व्यक्ति पुरुषार्थ के शिखर पर चढ़ सके। यही समय है जबकि व्यक्ति ज्ञान से विशेष ज्ञान की उपलब्धि के रंगमंच पर कदम रख सके।

भगवान आदि नाथ का यह जीवन समय पूर्वार्ध से गुजर रहा था। निलाजना का नृत्य और निलाजना की अकस्मात् मृत्यु ने आदि नाथ को अपनी याद दिला दी। आज भगवान आदिनाथ यही सब कुछ सोच रहे थे।

सोच रहे थे कि मेरे जीवन का पूर्वार्ध समाप्त होने जा रहा है। भरत बाहुबली का अभी पूर्वार्ध का प्रारम्भिक काल है। मुझे आध्यात्मिक पुरुषार्थ करना श्रेयकर है। राज्य कार्य अब भरत और बाहुबली कुशलता के साथ कर सकते है। उन्हे अपने शौर्य का सदउपयोग करना भी चाहिए।

भगवान आदि नाथ के वैराग्य वर्धक विचारो मे जागृति होती जा रही थी। लौकान्तिक देवो ने आकर और भी विशेष जागृति की। ससार की क्षण भगुरता का एक वैराग्य वर्धक चित्र देवो ने आदिनाथ भगवान के समक्ष प्रस्तुत किया। जिसके फल स्वरुप आदिनाथ भगवान को अवशेष भी दृष्टिगत होने लगा।

ज्ञान की ओर वैराग्य की मिली-जुली मिश्रित धारा मे सारा वातावरण बह रहा था। आज सारा समाज आदि नाथ के विचार मे खो रहा था।

समय को व्यर्थ न जाने देने के विचार से भरत और बाहुबली की ओर स्नेह की दृष्टि से देखा। दोनो पुत्र नम्र हो विनीत भावो से पूज्य पिता के चरणो की ओर निहार रहे थे। आदिनाथ ने अपना साम्राज्य पद विभूषित मुकुट सभी सभासदो, देवगणो के समक्ष भरत के सिर पर रखा।

चारो ओर दुन्दुभि बज उठी। जय जय कार हो उठी। भरत देखता का देखता ही रह गया। नम्रीभूत हो द्रवित वाणी से भरत बोला—

"भगवान ! यह आपने क्या किया ?"

"उचित ही किया है भरत।

"किन्तु प्रभो ! मैं इस योग्य······

"मैने तुम्हे योग्य समझा है तभी तो यह श्रेष्ठ कार्य किया है।

"पूज्यवर ! यह राज्य व्यवस्था, यह शासन, यह समाज सगठन यह प्रजा की पालना, क्या मै .. .. क्या मै... . .

"हा ! हा ! यह सब कुछ तुम सरलतापूर्वक कर सकते हो। तुम तो ज्ञानी और कार्यकुशल हो। हर प्रकार की विद्या कौशल्य तुम्हारे पास हे। यो अपने आपको दुर्वल ना समझो।

"भगवान्... . ... ।भरत ने अपना मस्तक पूज्य, भगवान आदि नाथ के चरणो मे रख दिया। फिर जय जय कार से गगन मण्डल गूंज उठा।

फिर भगवान ने बाहुवली की ओर देखा। बाहुवली तो नम्रता से जमीन मे धँसासा जा रहा था। पैर के अगूठे से जमीन कुरेदता हुआ प्रसन्नता की लहरो मे गोता लगा रहा था। उसकी दृष्टि तो भगवान के चरणो पर लगी हुई थी।

तभी भगवान ने कहा–

"बाहुवली।

"जी प्रभो ! बाहुवली का हृदय ममता, प्रेम, मोह और नम्रता की मिश्रित धाराओ से द्रवित हो उठा। "लो ! तुम्हे युवराज पद देकर पौदनपुर का राज्य दिया जाता है।

"मुझे ? . किन्तु भगवान् मै तो .. मैं तो... "ज्ञात है कि तुम भरत के आज्ञाकारी और स्नेह से पूर्ण भाई हो। और तुम भरत का अटूट अन्यन्य आदर भी करते हो। किन्तु मेरा अपना शासकीय कर्त्तव्य भी तो मुझे करना है।

"ओह भगवान! बाहुवली ने भगवान आदि नाथ के चरण छू लिए और गद्गद हो उठा।

इस समय जो कुछ भी हो रहा था वह आनन्ददायक और और मगल कारक था। एक ओर तो भगवान के वैराग्य का उत्सव मनाया जा रहा था तो दूसरी ओर भरत का सम्राट बनने

का उत्सव हो रहा था।

एक ओर नृत्य, गान हो रहा था तो दूसरी ओर वैराग्यवर्धक ज्ञान की देशना हो रही थी।

यशस्वती और सुनन्दा रानिया हस भी रही थी और हृदय बैठा भी जा रहा था। आज उनके पुत्र को साम्राज्य पद दिया गया है और आज ही पति से उनका बिछोह हो रहा है। क्या करें वे दोनो ? हस भी नही सकती तो रो भी नहीं सकती।

अयोध्या का कौना कौना नाच भी रहा था और आहे भी भर रहा था।

क्यो ???

क्योकि सृष्टि के सृजनहार भगवान आदिनाथ आज उनके बीच से जा रहे थे। जगल का वास करने को, अपने आप में रमने को। मोह की जजीर को तोड रहे थे। वैराग्य-उपवन के आध्यात्मिक पुष्पो की गध ले रहे थे।

मणिजड़ित पालकी मे आदिनाथ विराजमान हुए। पालकी को मानवो ने और स्वर्ग के देवो ने उठायी। जय जय कार हो उठा। पुष्प बरस पडे और जनसमूह उमड पडा। सभी ओर से यही आवाजें आ रही थी।

"आज भगवान कहा जा रहे हैं ?"
"महलो में क्यो नही रहते ?"
'क्या दुख था इनको महलो मे ?"
"कही झगड़ा ! तो नहीं हो गया है ?"
"अरे ! तुम समझते नहीं।"
"क्यो ? हम क्यो नहीं समझते ?"
'भगवान को वैराग्य हो गया है ?"
"वैराग्य क्या ???'

"यही कि अब वे मोह मे नही पडने के ।"

"क्यो ?"

"किससे मोह करे ? तुमने देखा या सुना नही कि अप्सरा नाचती नाचती ही मर गई ?"

"तो इससे क्या हुआ ?"

"अरे जब स्वर्ग की अप्सरा को ही अपनी मृत्यु का मालूम नही, जब वही अपने आपको मौत से न बचा सकी तो भला मानव का क्या ठिकाना ?"

"आँ !!! .... "

"चौकता क्या है ? आयु तो एक दिन सभी की समाप्त होनी ही है । तब क्यो न अपना और परकाहित कर लिया जाय ।"

"बात तो कुछ अच्छी सी ही है ।"

"अच्छी सी ही नही श्रेष्ठ भी उत्तम भी और योग्य भी है । आज भगवान दीक्षा लेगे । फिर तप करेगे ? फिर ज्ञान की उपलब्धि करके हम जैसे अल्पज्ञो को ज्ञान देंगे ।"

आदि ! आदि ! उधर पीछे-पीछे यशस्वती और सुनन्दा रानी ऐसी लग रही थी जैसे मानो लताये मुरझा गई हो। नेत्रो से अपलक आंसुओ की झडी लग रही थी। रो भी रही थी और हृदय की पुकार भी सुन रही थी । हृदय कह रहा था—यो रोकर अमगल मत करो। धैर्य रखो और सयम से काम लो। आज तुम्हारे पति, परमेश्वर बनने जा रहे है ' ' उनके लिए मुस्कान के पुष्प बरसाओ—आसुओ से राह मे कीचड मत करो !"

जिस उपवन मे भगवान आदि नाथ जाना चाह रहे थे—वह अयोध्या के बहुत दूर था । अत जनसमूह साथ न दे सका। स्त्रिया थककर चूर हो गई । पैर लडखडाने लगे । बाल बिखर गये और वस्त्र सम्हाले भी सम्हलने नही लगे ।

महाराज नाभि और महारानी तो आज हर्ष से सराबोर हो रहे थी। साथ ही साथ अपने आपको भी देख रहे थे—जो अब तक आत्म-कल्याण के पथ पर चल नही सके थे। आज वे वह अवसर प्राप्त कर रहे थे।

सिद्धार्थ नामक उपवन मे भगवान ने प्रवेश किया। भरत, बाहुबली के साथ अन्य हजारो राजा महाराजा भी साथ थे। एक स्वच्छ सुन्दर चन्द्रकान्तमणी की शिला पर भगवान पूर्व की ओर मुह करके विराजमान हो गये।

परोक्ष "ओम् नम सिद्धेभ्य" कहकर दीक्षा ग्रहण की। आये हुए हजारो राजाओ ने भी भगवान का साथ देने की अभिलाषा से दीक्षा ली और उमग की तरग मे आ आकर परिग्रह का त्याग किया।

महिला समाज ने भी यथोचित सयम धारण किया। जनसमूह एव स्वर्ग के देवो ने भगवान् आदिनाथ की भावभीनी पूजा की। स्तुति की। और अभिवादन कर करके मस्तक झुकाये।

आज का यह दिन चैत्र कृष्णा नौमी की सायकालीन सध्या का था। सारा वातावरण शान्त था। शुद्ध था। पवित्र था और मगलमय था।

सृष्टि के सृजनहार भगवान् आदिनाथ ने मौन धारण किया और ध्यानस्थ हो बैठ गये।

× × ×

ग्राहस्थ्य मे रचे पचे सासारिक सस्कारो की लडिया काटते काटते, एक ही स्थान पर ध्यानस्थ हुए आज आदिनाथ मुनिराज को तीन माह हो गये। अन्य दीक्षित राजा महाराजा भी आदिनाथ का अनुकरण कर रहे थे। छह माह का उपवास धारण करते हुए मुनिराज आदिनाथ अपने योगो (मन वचन काय) की एकाग्रता मे

तल्लीन थे।

किन्तु अन्य साथी, जिन्होने मात्र मोह के वश, मात्र देखा देखी, मात्र अपनी शान रखने के लिये और मात्र अपनी शिष्ठता प्रकट करने के लिए दीक्षा ली थी वे इस छह माह के लम्बे उपवास से व्याकुल हो उठे। छह माह तो क्या, जब तीन माह ही समाप्त हुए थे कि एक दूसरे की ओर देखने लगे··· ।

"भगवान् कब तक बैठे रहेगे ?"

"मालूम नही।"

"पर यह भी क्या दीक्षा ?"

"क्यो ?"

"अरे ! हम तो भूख के मारे मरे जा रहे है।"

"थोडा धैर्य भी तो धरो।"

"धैर्य ??? तीन माह तो व्यतीत हो गये धैर्य को धरते धरते ! अब नही रहा जाता।"

"तो क्या करोगे ?"

"करेंगे क्या ? हम तो अपने घर जायेंगे ? कौन भूखे मरे ? यह भी कोई तपस्या है ?"

"यदि घर गये और भरत महाराज नाराज हो गये तो ???"

"हा ! यह बात भी सच है ? पर किया क्या जाय ?"

"सुनो ! मैं समझता हूँ कि और थोडे दिन महाराज यो बैठे रहेगे। बाद मे तो उठेंगे ही, और उठकर अयोध्या जायेंगे, फिर राजकार्य करेगे और हम पर प्रसन्न होकर हमे भी शरण देंगे। हमारी भी रक्षा करेंगे ?"

"अरे ??? यह बात है ! तब तो बहुत ही प्रसन्नता की बात है ! इतने दिन भूखे रह गये तो और थोडे समय तक रह लेंगे।"

भगवान आदिनाथ तो पूर्ण मुनि अवस्था मे विराजे हुए थे।

अठाईस मूलगुण जो मुनि मे होने चाहिए—वे उनमे थे। बारह प्रकार के कठोर तप मे तल्लीन महामुनिराज सयम के शिखर पर चढने मे तत्पर थे। अडिग, अचल, पर्वत की भांति स्थिर, महा-मुनिराज आदिनाथ अपने ही आप मे लीन थे।

जटाये बिखरी हुई, दीर्घकाय शरीर तेज व प्रभायुक्त चेहरा, सब कुछ उनकी तपस्या का दिग्दर्शन करा रहे थे। सत्यत भगवान आदिनाथ तपस्वी थे।

विषयाशा वशातीतो, निराम्भो ऽपरिग्रह ।
ज्ञान ध्यानतपोरक्त तपस्वी स प्रशस्यते.।।

के अनुसार वे विषयवासना से दूर, आरम्भ परिग्रह से रहित और ज्ञान, ध्यान, तप मे लीन सच्चे तपस्वी थे। जब एक माह और व्यतीत हो गया और आदिनाथ अब भी न उठे तो अन्य निर्बल मुनि व्याकुल हो उठे।

"अब नही रहा जाता।"

"भगवान ! हमे क्षमा करो ···· हमे छुट्टी दो।"

"भगवान् ! हम तो अपने घर जायेंगे।"

"भगवान् ! अब हम से भूख नही सही जाती।"

"और भगवन् ! प्यास भी नही सही जाती।"

"तो भगवान् ! नगा भी नही रहा जाता।"

"हा हा, भगवन् ! गरमी तो जैसे तैसे सहन कर ली पर सरदी सहन नही की जा रही है।

"अब हम कुछ भी खालेंगे······कुछ भी पीलेंगे· ··"

"सुनो भगवन् ! नाराज नही होना।"

"बताओ ! भगवन्, इसमे हमारी भी क्या त्रुटि ? हमने तो सोचा था कि आप दीक्षा धारण करके खूब खायेंगे और हमे भी खिलायेंगे।"

"हा ! हा ! भगवन् सचमुच हमने यही सोचा था कि घर के झगडो से छुटकारा भी मिलेगा और खाने पीने को भी अच्छा मिलेगा।"

"पर भगवान् ! आप तो आख मीच कर पत्थर बने ऐसे बैठ गये ·· ऐसे बैठ गये ·· कि जैसे हमे पूरे ही भूल गये हो।"

इस प्रकार अपने आप ही सोच विचार कर व्याकुल मुनि लोगो ने यदा कदा घूम फिर कर कन्दमूल फलादि खाने लगे। सयम का मार्ग सहन न कर सकने के कारण अनर्गल कार्य कर रहे थे। नगे भी थे और अनर्गल कार्य भी कर रहे थे। तभी······

तभी एक ओज भरी वाणी गू जी · ··

"ठहरो !!!"

"कौन ? ···· "

"आप सब मुनि हैं, और जो कुछ आप कर रहे हे—वह मुनि योग्य नही। या तो आप मुनि वेश का त्याग कर दो या मुनि ही रहना चाहते हो तो सयम शिखर से यो मत गिरो।

"तब हम क्या करे ?"

"या तो यह मुनिपद छोडो या अटल रहो।"

"हम मुनि ही तो बने हुए हैं ?"

"तो फिर यह कन्दमूल फल खाना, गन्दा कीटाणुयुक्त पानी पीना, छोडना पडेगा।"

"पर भूख प्यास जो लगी है ?"

"तो क्या तुम अपनी इन्द्रियो पर थोडा-सा भी सयम नही कर सकते ?"

"सयम करते-करते तो आज पाच माह व्यतीत हो गये। अब नही रहा जाता !"

"तो छोड दो मुनिपद।'

"पर आप हो कौन ?"

"इस उपवन का प्रमुख रक्षक 'वनदेव'।"

"ओह ... ।"

सब चौंक गये और मुनिपद छोड़ना ही अच्छा समझ किसी ने छाल (पेड़ो की वक्कल) किसी ने पत्ते, अपने शरीर पर लपेट लिये। किसी ने लगोट लगाकर शरीर पर मिट्टी लगा ली। किसी ने क्या और किसी ने क्या ? • तात्पर्य यह–कि नाना भेष मे वे तपस्वी बन गये और जैसेतैसे पेट भर कर भूख-प्यास मिटाकर जैसे-तैसे ध्यान भी करने लगे।

उनमे से विशेष अनुभवी कोई उनका मुख्य हो गया। जिससे उनका भी उन्ही रूपो मे भ्रमण होने लगा। भोला भाला और अनविज्ञ मानव उनकी आज्ञा मे चलने लगा।

आज छ माह पूर्ण होने जा रहे थे। पत्थर की मूर्ति समझ जगली जानवर भगवान के समीप बैठ गये थे। कोई-कोई जानवर तो उनके शरीर से अपना शरीर भी खुजा रहा था।

चिड़िया, निडर होकर महाराज के मस्तिष्क पर आकर बैठ जाती। तपस्या और शान्त वातावरण के प्रभाव से ना वहा डर रहा और ना वैर-भाव ! जाति विरोधी भी अपना विरोध त्याग कर भगवान के चरणो मे बैठे हुये थे। सत्य ही—तपस्या एक महान् विभूति होती है।

---

६ जब रागद्वेष मोह का व्यामोह नष्ट हुआ

इन्द्रिय सयम और आकाक्षाओं जजीर को थामे हुये आज महा-मुनिराज अपना छ माह का तपोयोग समाप्त कर चुके थे। छ माह समाप्त भी हो गये इसका उन्हे भान भी नही रहा था। मन-स्थिति ही ऐसी हो गई थी कि छ माह समाप्त होते ही नेत्र खुल गये।

निरन्तराय छ माह का तपोयोग समाप्त होने पर सभी को प्रसन्नता हुई। ऐसे समय मे जब कि पुण्य का उदय होता है तो स्वर्ग मे देव भी अपनी तूती बजाने मे पीछे नही रहते। वे भी पुष्प वर्षा करने लगे। दुंदुभि बजाने लगे और जय-जयकार करने लगे।

पर इन सबसे आदिनाथ मुनिराज को क्या लेना देना। उनकी आत्मा तो छ माह के तपोयोग मे मभ्र चुकी थी। निर्मल आत्मा मे निर्मल विचार समा चुके थे। तृष्णा, लालसा, वासना सब आदिनाथ के विचारो मे से भाग चुकी थी। कोई बाजा बजाये या पुष्प बरसाये, कोई जय बोले या कीर्तन गाये—उन्हे क्या ? वे तो नीरस भी नही तो सरस भी नही।

आहार परम्परा को जन्म देने वाले भगवान् आदिनाथ अपने आसन से उठे। ओह ! कैसा शरीर हो गया था उनका ? जटा-जूट, मिट्टी आदि से वैष्ठित और भीमकाय।

महा-मुनिराज आदिनाथ जगल से शहर की ओर पधारे। आहार की मुद्रा धारण किये हुये आदिनाथ नीची दृष्टि किये हुये धीरे-धीरे चल रहे थे ।

आदिनाथ महा-मुनिराज को यो देखकर नगर निवासी बहुत दुखी हुये । आपस मे ही कहने लगे—

"हाय ! इनको किसी ने वस्त्र भी नही दिये ।"

"हाय-हाय ! शिर के केश भी कितने रुखे और लम्बे हो गये हैं ।"

"हाय-हाय ! शरीर कितना सूखकर काटा हुआ जा रहा है ।"

"ओह ! जिस भगवान ने हमे जीविकोपार्जन करना सिखाया आज वे इतने दुखी है ।"

हाय ! हाय ! इन्हे किसी ने खाने को भी नही दिया ।"

"ठहरो, ठहरो प्रभो ! मैं अभी खाना लाता हूँ ।,'

"रुको प्रभो ! मैं अभी वस्त्र लाता हू ।"

"हा ! हा ! प्रभो, जरा यहा ही रुकिये •• मैं अभी हीरे-मोती लाता हूँ ।"

आहार विधि से अनविज्ञ और भोले-भाले मानव घबरा उठे । कोई वस्त्र ला रहा हे तो कोई फल-फूल । कोई मेवा मिष्टान ला रहा हे तो कोई हीरे-मोती । किसे ज्ञान था कि यह दिगम्बर मुनि हैं और इन्हे आहार नवधा भक्ति से दिया जाता है ।

ज्ञान भी कैसे हो ? सृष्टि की आदि मे यह प्रथम और आश्चर्य-कारी दृश्य था । सब देख-देखकर दु खी हो रहे थे । कुछ तो भरत जी को भी कोस रहे थे ।

"हाय ! आप तो सम्राट बन गये और पिता जी वेचारे नगे ही फिर रहे है ।"

"हाय ! हाय ! इन्हे महज खाने को, पहनने को भी नही

दिया।"

"हाय ! हाय ! कैसा पुत्र है ?"

कई राजा महाराजा उनके पास रथ ले आये···बोले—

"इसमें बैठिये महाराज।"

"हा ! हा प्रभो ! आपका पैदल चलना शोभा नही देता।"

"देखिये आपके पैरो मे काटे चुभ जायेगे।"

सभी कुछ कहने लगे·· पर आहारचर्या पर चलने वाले महा-मुनिराज इन सबको अन्तराय जानकर वापिस वन मे चले जाते। और फिर ध्यान मे बैठ जाते।

छ माह और व्यतीत हो रहे है·· पर नवधा भक्ति से आहार किसी ने भी नही दिया। दे भी कौन ? ना तो किसी ने बताया और ना किसी ने पहले दिया।

आप सोच रहे होगे कि वे देवता अब कहा गये जो गर्भ व जन्म के समय रत्न बरसा रहे थे। जो मुनियो को भ्रष्ट होते हुये उन्हे मुनिपद बता रहे थे।

क्यो नही वे ही देवता गृहस्थियो को नवधा भक्ति बताते ? क्यो नही आहार क्रिया बतलाते ? क्यो नही आहार देते ?

दे भी कैसे ! देवता तो कोरे पुण्य के दास होते है। पूरे स्वार्थी। उनका क्या विश्वास ? जब शुभ या पुण्य का उदय होता है तो देवता भी चरण छूने दौड आते है। और अशुभ का उदय होता है तो एक कोने मे छिपे बैठे रहते है।

भगवान आदिनाथ के भी कोई अशुभ का ही उदय था।

"अरे ! भगवान के भी अशुभ का उदय ???"

"क्यो ? इसमें आश्चर्य ही क्या है ?"

"सरासर आश्चर्य है ! ऐसा तो हो ही नही सकता।"

"क्यो नहीं हो सकता ?"

"भला जो भगवान ठहरे, उन पर क्या अशुभ हो सकता है ?"

"अरे भैया ? आदिनाथ थे तो पुरुष ही ! थे तो सांसरिक प्राणी ही है। अपने शुभाशुभ कर्म से अभी बिल्कुल रहित तो हुए नही थे। अपितु कर्मो की कडिया काटने मे तत्पर थे। जब तक कर्मो की कडिया कट न जाती तब तक तो वे असर दिखाएगी ही ?"

"गलत। हम नही मानते !"

"क्यो नही मानते !"

"इसलिए कि जिन्होने छहमाह तक घोर तप किया। जिन्होने राज्यपाट परिवार के प्रति किन्चित भी मोह नही किया ऐसे प्रभावशाली महान् आत्मा का कर्म कुछ नही बिगाड सकते। और ---"

"और क्या ?"

"और यदि कर्म फिर भी ऐसी आत्मा का कुछ बिगाड सकते हैं तो ... तो ..."

"हा ! हा ! बोलो .....तो क्या ?"

"तो समझो वह आत्मा महान् आत्मा नही हो सकती !"

"कल्पना तो सुन्दर है पर विवेक और न्याय सगत नही !"

"क्यो ?"

"वह इसलिए कि आत्मा प्रभावशाली है, अवश्य है—पर कर्मावरण उसको ढक देते हैं तो उसकी प्रभा उसी तक सीमित रहकर लुप्त सी रह जाती है।"

"यह कैसे ?"

जैसे सूर्य प्रभावशाली होता है। होता है भी ?'

"हा हाँ ! होता है।"

"पर जब बादल उसके आगे आ जाते है तो प्रकाश कहा चला जाता है ?"

"उसका प्रकाश······उसका प्रकाश···· ·"

"बोलो ? बोलो !"

"छिप जाता है !"

"कहा ?"

"आ ! ······नही ! नहीं ! रुक जाता है ।

"क्यो ?"

"क्योकि बादल जो आगे आ गया !"

"तो क्या सूर्य से भी विशेष आभा वाला या शक्ति शाली बादल है ?"

"नही तो।"

"फिर ? ? ?"

"आपने तो मुझे उलझन मे डाल दिया।"

"उलझन नही है मेरे दोस्त ! यह न्याय की तुला है। सूर्य की प्रभा सूर्य मे ही है । मात्र बादल की ओट मे रहने से वह हमे दृष्टिगत नही होती । पर ज्यो ही बादल हटा कि प्रभा फिर चमक उठती है ?"

"ओह अब समझा ?"

"समझ गए ना ?"

"हा अब समझा कि जैसे बादल के आवरण से सूर्य कीप्रभा दृष्टिगत नही होती वैसे ही आत्मा पर छाए कर्मावरण से भी आत्मा की महानता दृष्टिगत नही होती । और उसी के अनुकूल प्रतिकूल वातावरण होता रहता है।

× ×　　× ×　　× ×

विशाल एव सुन्दर नगरी हस्तिनापुर मे उस वक्त राजा सोमप्रभ थे। इनके एक छोटे भाई का नाम था श्रेयान्स कुमार, श्रेयान्स कुमार योग्य और पुण्याश्रव से ओत प्रोत थे। विचार विवेक सम्पन्न यह श्रेयान्स कुमार अभी रात्री के पलायमान हो जाने पर सोकर उठे ही है।

चेहरे पर प्रसन्नता और प्रसन्नता के कण कण से मिली हुई जिज्ञासा किरण। भावो मे उमग और हृदय मे आनन्द की तरग। चकित से, पुलकित से, हर्षित से श्रेयान्स कुमार शैया से उठकर स्नान आदि से निवृत्त हुए। पश्चात् अपने बडे भ्रात के पास पहुच चरण छू कर बैठ गए। चेहरे की प्रसन्नता, भावो मे जिज्ञासा देखकर सोमप्रभ ने पूछा—

"क्या बात है श्रेयान्स ?"

"बडी अद्‌भुत बात है भ्रात !"

"मैंने रात्री को, सोकर उठने से पहले कुछ स्वप्न देखे है !"

"स्वप्न !!!"

"हा भ्रात !"

"कैसे स्वप्न ? क्या क्या देखा है तुमने स्वप्न मे ?"

"बहुत बडा स्वर्ण सरीखा सुमेरू पर्वत, कलावृक्ष, सिह, सुडौल बैल, सूर्य और चन्द्रमा, समुद्र और सातवे स्वप्न मे कुछ देवियां देखी जिनके हाथो मे अष्ट मगल द्रव्य थे !"

"वाह ! वाह !! वाह !!!"

"क्यो ? ऐसी क्या बात है ?"

"तुम्हारे स्वप्नो के आधार पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज हमारे शहर मे कोई महानप्रभावशाली, पुण्यात्मा, जग-पथ प्रदर्शक, और धर्म नौका का खिवैया आने वाला है।"

"सच !!!" श्रेयान्स कुमार का रोम रोम नाच उठा।

दोनो भाई प्रसन्नता से पुलकित हो रहे थे। तभी द्वारपाल ने अन्दर प्रवेश कर अभिवादन करते हुए बडे हर्ष के साथ निवेदन किया—

"प्रभो ! · ····"

"कहो ! कहो ! क्या बात है ?"

"अयोध्या के महाराज आदिनाथ का हमारे शहर मे प्रवेश हुआ है !"

"अरे ! ! ! ·····और कौन है उनके साथ ?"

"कोई भी तो नही । वे अकेले ही है और वे भी नगे !"

"नगे ? क्यो ? "श्रेयान्स ने आश्चर्य से पूछा !

"उन्होने दीक्षा ले ली थी—शायद इसीलिए !"

सोमप्रभ ने गम्भीरता से उत्तर दिया !"

दोनो भाई दौडकर महल से नीचे आए ! क्या देखते है कि —आदिनाथ मुनि आये हुए है और हस्तिनापुर की जनता उन्हे पहचान कर······नाना भाँति के प्रसाधन उन्हे भेंट कर रही है । स्त्रियो का उत्साह इतना बढा चढा हुआ है कि उन्हे देखने के लिए बावली सी हुई आ रही है। श्रेयान्स कुमार ने भैया से कहा—

"अरे ! इस स्त्री के हाथ तो आटे से सने हुए है !"

हा ! और उस स्त्री को देखो जिसके केश मे अभी भी पानी चू रहा है !"

"और उसको देखिए·· 'उस पैड के नीचे वाली को जिसने काजल होठो पर और सिन्दूर की लाली आखो पर लगाई हुई है ।"

"अरे ! इसको देखो जो भागती हुई अपनी साडी को आधी पहने आधी सिमेटे आ रही है। जिसे अपने तन की भी सुधि नही ?"

इस प्रकार अबोध और भोली भाली प्रेम रस मे भीगी जनता के हाव भाव देख ही रहे थे कि आदिनाथ को अपनी ओर आते देखा। दोनो ने दौडकर चरण छूए। पद प्रक्षालन किया और नमोस्तु कहकर अपलक उनको निहारने लगे।

श्रेयान्स कुमार तो देख कर देखते ही रह गए। बार-बार एक टक से निहारते ही रह गए। उनके मस्तिष्क मे एक झन्नाटा सा हुआ जैसे उन्हे विस्मृत, स्मृति का भान हो रहा हो। कभी आंख मीचते कभी खोलते, कभी हर्ष से पुलकित हो उठने और कभी रो पडते। अनन्त विगत की विस्मृति जागृत हुई जा रही थी। तभी उन्हे ऐसा अहसास लगा जैसे उसने कभी ऐसे ही मुनि को आहार दिया हो। वह विस्मृति और भी जागृत हुई तो जैसे प्रत्यक्ष, स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मुनि द्वार पर आए उन्हे पडगाहन किया, और नवधा भक्ति से आहार दिया। श्रेयान्स अपनी विगत स्मृति मे खो गए। तभी सोमप्रभ ने उसकी ओर देखा और बोले—'श्रेयान्स।'

'आं।'''' श्रेयान्स कुमार जैसे सोकर उठे हो। उन्होंने अब प्रत्यक्ष देखा कि भगवान आदिनाथ तो मुनि बने हुए आहार की मुद्रा धारण करके सामने खडे हुए है। और मैं · मैं '

श्रेयान्स कुमार ने आस पास देखा आहार की कहा व्यवस्था। फिर भी दौडकर शुद्धता पूर्वक गन्ने का रस तैयार करवाया। आप भी नहा-धोकर शुद्ध हुए। भावो को विशुद्ध बनाकर एकदम हाथ मे जल से भरा कलश ले द्वार पर आकर बोलने लगे'''

'हे स्वामी। अत्र तिष्ठहु, तिष्ठहु, तिष्ठहु आहार जल शुद्ध हैं।'

सबकी दृष्टि उस ओर गई। सब इस नई विधि नई रावी

को देखकर चकित से रह गए। और महामुनि आदिनाथ ?

महामुनि आदि नाथ•••आगे बढे और श्रेयान्स कुमार के सामने मुद्रा बनाए खडे हो गए। श्रेयान्स कुमार ने तीन प्रदक्षिणा दी। नमोस्तु किया। पद प्रक्षालन किया। पूजा की। मन वचन काय की शुद्धता का सकेत दिया और गन्ने के रस (इक्षुरस) का भाव भक्ति पूर्वक आहार दिया।

ठीक एक साल पश्चात् भगवान आदिनाथ ने आज आहार गृहण किया था। सारा हस्तिनापुर क्षेत्र मगलमय प्रसाधनो से सम्पन्न हो उठा। देवगण भी पीछे न रहे। उन्होने पचाश्चर्य की वर्षा शुरु कर दी।

चारो दिशा मे अक्षय शान्ति, अक्षय सुख और अक्षय आनन्द की लहर छा गई। ईक्षुरस का अमृत मय आहार पाकर भगवान आदिनाथ ने सतुष्टि प्राप्त की। उधर राजा श्रेयान्स ने

आहारदान की प्रारम्भिका कर जगत की ससृति मे यह मगलमय कार्य किया। यह दिन वैसाख शुक्ल तृतीया का मगल दिन था। तभी से इस दिन कर नाम 'अक्षय-तृतीया' प्रचलित हो उठा।

आहार कर लेने के पश्चात् भगवान आदिनाथ ने जगल की ओर विहार किया। आज उनके वैराग्य-समुद्र मे अनेक लहरें उठ रही थी। आत्मावरण धीरे-धीरे स्वत हटने लगा था।

शान्त और नीरव वातावरण के वन मे एक वृक्ष के नीचे सुन्दर शिला पर आदिनाथ विराजे हुए थे। आज वे अत्यन्त शान्त, निराकुल थे। अपने ही आप मे लीन। इधर ये अपने आप मे, लीन हो रहे थे और उधर वैभाविक दु ष्परणतियाँ मम मसा रही थी। क्योकि अब उनको आदिनाथ के पास रहने के लिए स्थान नही मिल पा रहा था।

सबकी सब वैभाविक परणतिया अपने महाराज 'मोह' के पास गई और रोने लगी।

'हाय मालिक। अब हमारा क्या होगा?

'क्यो • क्या बात है?'

'अजी मालिक 'आजतक हम जिन आदिनाथ के पास आराम से रह रही थी—वे ही हमे आश्रय नही दे रहे हे।"

'क्यो???'·· मोह की भौंहे तन उठी।

'उन्होने शान्ति, निराकुलता और मौन को अपनी रक्षा के लिए बुला लिया है।'

'तो क्या हुआ?'

'अजी वाह मालिक। भला जिस स्थान पर शान्ति, निराकुलता और मौन का आश्रय हो वहा हम कैसे टिक सकती हैं?'

'कायर। डरपोक। ' मोह गरज उठा।

'आप तो नाराज हो गए।'

'तो और क्या तुम्हे सीने से लगाता। जो तुम्हारा आश्रय अनन्त समय से थी—जिस पर तुम्हारा अधिकार लम्बे और अतीत विगत से था आज उसी अधिकार को यो रो रोकर छोड रही हो। ' बेशरम कही की।"

'पर बताइए तो मालिक हम क्या करे ?'

'घबराओ नही। जब तुम मेरी शरण मे आही गई हो तो तुम्हारी सहायता भी की जाऐगी अच्छा यह बताओ…तुम्हारे और साथी कहाँ है ?'

'कौन-कौन साथी मालिक ?'

'अरे वे ही क्रोध, मान, माया, लोभ, और झूंठ, चोरी, कुशील।'

'हाँ। हाँ। मालिक ··वे सब वही आदिनाथ से दूर एक तरफ खडे-खडे टुकर-टुकर देख रहे है। उनका भी वस नही चल पा रहा है।

'हत्तेरी की। सबके सब डरपोक।'' चलो मैं तुम्हारे आगे चलता हूँ। देखता हूँ कि आदिनाथ तुम्हे कैसे आश्रय नही देते ?'

मोह बडी हैकड और ऐंठ के साथ चल रहा था। छल कपट, क्रोध, मान, माया, लोभ झूंठ, चोरी, कुशील, आदि दुष्परणतियाँ चुपके-चुपके मोह के पीछे-पीछे चल रही थी। मोह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला जा रहा था। उसने देखा कि एक वृक्ष के नीचे, सुन्दर शिला पर आदिनाथ पत्थर की मूर्ति बने शान्त और निश्चल बैठे है···वह क्षण भर के लिए ठिठक गया।

'उसे ठिठकते देख सभी परिणतियाँ जो मोह के पीछे-पीछे आ रही थी ··एक दम दौडकर वापिस लौट गई।'' मोहने जो

पीछे फिर कर देखा तो माथा ठोक लिया। चिल्लाकर बोला—

'अरे कमबख्तो। भाग क्यो गए ?'

'नही। नही। मालिक हम नही आने के।'

'क्यो ???'

'हमे तो पहले ही लताड मिल चुकी है।'

'कैसी लताड ??? • कब ???

'जब इन्होने सासारिक ठाठबाठ छोडा था तभी हमे तो निकाल दिया गया था। अब जब आपही इन्हे दूर से देखकर ठिठक गए तो आप हमारी क्या सहायता कर सकते हैं ?'

'अरे !!! • ' मोह तिल मिला उठा। वह कुछ हिम्मत करके आगे बढा और बढता ही गया। ज्यो ही वह आदिनाथ के पास जाने लगा था कि······

'ठहरो। कहा जाते हो ?'

'आदिनाथ के पास।' मोह ने हिचकिचाते हुए कहा।

'कौन हो तुम ?'

'मैं मै• मुझे 'मोह-राजा' कहते हैं।"

'ओह ! तो आप है मोह राजा जी।'

'जी हा। मुझे ही मोह राजा जी कहते है।'

'क्यो आये हो यहा ?'

'अरे !!! मै तो इनके साथ सदैव से रहा हूँ। कभी भी मैंने इनका साथ नही छोडा। ये भी मुझे सदैव साथ रखते रहे है। •• आप जाकर आदिनाथ जी कहे तो सही कि--आपसे 'मोह राजा' मिलना चाह रहा है।'

'भोले राजा। कहा सोये थे इतने समय से ? जाओ ? भाग जाओ यहा से। अब यहा तुम्हे आश्रय नही मिल सकेगा।'

'क्यो ?'

'क्यो कि अब आदिनाथ जी ने हमे जो अपना लिया है।'

'आप कौन है ?'

'हम कौन हैं ? सुनोगे—एक-एक का परिचय ?'

'हा ! हा ! जरूर सुनू गा।

'तो सुनो यह है सुमति महारानी जी ! और आप है विवेक राजा जी। इनसे मिलिए 'आप है शान्ति देवी जी। और आप हैं– वैराग्य चन्द जी। ·· ··'

'और आप कौन है ?

'मैं ?· ·मैं मैं' रत्न त्रयिका।'

'मै समझा नही।'

'तुम समझ भी नही सकते।'

'क्यो ?'

'क्यो कि जिस दिन तुम मुझको समझ जाओगे उसीदिन तुम्हारा अस्तित्त्व ही समाप्त हो जाएगा। फिर तुम ससार की भोली-भाली आत्मा को यो रुला नही सकती। यो भटका नही सकती।'

'चलो यो ही रहने दो कि मै समझू गा नही पर आपका परिचय सुनने मे भी क्या एतराज है।'

कोई ऐतराज नही। · लो सुनलो · सम्यकदर्शन सम्यक ज्ञान, और सम्यक चरित्र से रची पची जीवन मे सुगन्धि भर देने वाली और आत्मा को तुम जैसे लु़टारो से बचाने वाली मैं 'रत्नत्रयिका' हूँ। जिस भी आत्मा ने मुझे अपना या तो समझलो उसने ही कल्याण पथ पालिया।'

'यह तो तुम्हारा अहकार है।'

'अहकार नही मोह राजाजी। यह वास्तविकता है। और तुम जैसे कायरो को कह देने वाली सत्यता है।'

'लेकिन मैं ऐसे हार नही मानने का। आखिर मैं भी राजा हूँ। मेरे साथ भी अनेक सेना है। मैंने बडे-बडे ऋषियो, मुनियो, ज्ञानियो को झकझोरा है। उन्हे ऐसा गिराया है कि सम्हलना भी उनका मुश्किल हो गया था।'

'वे सब हारने वाले, गिरने वाले, कोई कायर ही थे। उन्होने मुझे वास्तविकता के साथ नही अपनाया होगा। तुम्हारा कोई न कोई जासूस उनके हृदय पटल के किसी कोने मे छिपा रह गया होगा। पर जानते हो यहा आदिनाथ के हृदय पटल पर से तुम्हारा एक-एक साथी भाग चुका है। भयकर से भयकर जासूस भी वह देखो उधर तुम्हारे पीछे खडा "टुकर-टुकर गरीबसा बना जमीन कुरेद रहा है।'

मोह चौंक गया! उसने 'पीछे फिर के देखा तो दग रह गया। उसके सभी साथी अग रक्षक—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सजवलन और माया, मिथ्या, निदान सभी जमीन मे धसे जा रहे थे। मोह हार चुका था। उसके पैर काप उठे थे। दिल बैठ चुका था। वह अब आगे न बढ सका।

रत्न त्रयिका मुस्करा रही थी। मोह को यो उलझन मे पडा देख कर बोली· जाओ! पीछे चले जाओ। किसी कामी, लोभी, मायाचारी और समार की भौत्तिकता मे फसे प्राणी के पास चले जाओ। अब तुम्हे वही जगह मिलेगी। यहा अगर एक भी कदम आगे बढाया तो वह धूलि धूसर हो जाएगा।

बेचारा मोह!

मोह मुँह लटकाए चला गया। सभी साथी भी भाग गए। अब आदिनाथ परमात्मा बनने जा रहे थे। ज्ञानावरणादिक ६३ कर्म प्रकृतिया अपने आप नष्ट हो चुकी थी।

जैसे सूर्य के आगे से बादल हटता है और प्रकाश चमक उठता है—वैसे ही आदिनाथ भगवान की आत्मा पर से कर्मावरण के हटते ही कैवल्य ज्ञान-प्रकाश चमक उठा। तीनो लोको की तीनो काल की अनन्त पर्यायें आज उन्हे प्रत्यक्ष हस्तरेखा के समान दृष्टिगत हो रही थी।

———

७ भारत का प्रथम सम्राट भरत और आदिनाथ की कैवल्य ज्योति

सम्राट भरत का राज दरबार सजा हुआ था। विशाल और सुन्दर ऊँचे सिंहासन पर भरत विराजमान थे। विशाल मण्डप मे सुन्दर और मखमली गलीचे पर मसनद लगाए हुए अनेक राजा महाराजा बैठे हुए थे। विषय 'राजनीति मे सफलता' का चल रहा था।' सभी राजागण अपनी-अपनी विवेक बुद्धि से अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे थे। सम्राट भरत गम्भीरता पूर्वक प्रत्येक के मन्तव्य को सुन रहे थे।

दण्ड और न्याय। अपराध और अपराधी के विषय मे चर्चा चलती-चलती राजनीतिज्ञो के आचरण पर आ टिकी थी। एक दूसरे की कमिया बताई जाने लगी थी। तभी भरत सम्राट ने अपनी ओज और विवेक मे रगी हुई वाणी से सबको सम्बोधन करते हुए कहा ••

यदि आप सब एक दूसरे की कमिया बताते रहे तो किसी की भी कमी दूर नही हो सकेगी। जिन कमियो, भूलो, त्रुटियो को तुम अच्छी नही समझते और एक दूसरे मे छुडवाना चाहते हो तो सबसे पहले तुम्हे अपनी ओर देखना होगा। जब स्वय अपनी ओर देखकर अपनी त्रुटि पकड लेगा और उसे निकालने की, सुधारने की, चेष्टा करेगा तो सभी की त्रुटिया स्वत ही दूर हो सकेगी।

रही बात अपराधी, अपराध, दण्ड और न्याय की। तो यह सब सामाजिकता के तथ्यो से सम्बन्ध रखकर राजनैतिकता के द्वार पर आ टकरा जाती है।

व्यक्ति अपराध जब करता है तब उसकी अभिलाषा शान्त नही होती। अभिलाषाएँ जब बढती हैं तब कि उसका मन बसमे नही रहता। मन बसमे जब नही रहता तबकि वह तृष्णा की आग मे झुलसा अपने विवेक को तिलाजली दे डालता है। अत यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी तृष्णा रोके, विवेक से चले, तो अपराध ही हो नही सकता।

अपराध कर देने के पश्चात् उसका उपनाम अपराधी हो जाता है। और अपराधी अपना विवेक खो बैठता है। अत उसको विवेक देने के लिए, राह दिखाने के लिए दण्ड की योजना होती है।

दण्ड भी उसके विचारो पर आधारित होता है। यदि अपराधी अविवेकी है, दुष्ट-स्वभावी है, हठग्राही है, तो उसे शारीरिक ताडना दी जाती है ताकि उसके मन मे उठी हुई दुष्परणतियों का तनाव शान्त हो सके। यदि अपराधी ने अपराध कर लेने के पश्चात् अपना अपराध नम्रता और लज्जापूर्वक पहचान लिया है, स्वीकार कर लिया है तो उसे मात्र मानसिक सवेदना के शब्दो से ही दण्ड दिया जाना उचित होगा।

न्याय एक सत्य की तुला होती है। जिस पर पक्ष विपक्ष के खोट बाट नही रखे जाते।

सत्य तो यह है कि अपराध उस समाज, उस शासन मे पनपते है जो समाज या जो शासन स्वार्थी, बन गया हो, तृष्णा की आग मे पड गया हो। जिसे मात्र अह और अहकार ने सता रखा हो। अत अपराध को जन्म देने वाला समाज और शासक

ही होता है।

तभी ·

तभी द्वारपाल ने बड़े हर्षोल्लास के साथ प्रवेश किया उसके कुछ ही क्षण पश्चात् सजाधजा सेनापति भी आया और तुरन्त उसी क्षण झनझन पायल को बजाती अपनी मधुर खुशी के पुष्प बरसाती एक सेविका ने भी प्रवेश किया।

तीनो के चेहरो पर असीम प्रसन्नता, उमग और उत्साह की झलक, छलक रही थी। तीनो ही कुछ कहना चाह रहे थे। कहने को उत्सुक भी थे और यह भी उस क्षण सोच रहे थे कि जो प्रथम आया उसे ही कहना योग्य है। तभी भरत सम्राट ने पूछ लिया—

"क्या बात है ! · · क्या कहना चाहते हो ?"

"महाराजाधिपति ! एक बहुत ही मगल सूचना देने को उपस्थित हुआ हूँ।" द्वारपाल ने उत्तर दिया।

"और मैं भी स्वामिन् कुछ आनन्ददायक सन्देश देने को आतुर हूँ।" सेनापति बोल उठा।

"प्रभो ! स्वामिन् ! ·· · मै भी सुखद सन्देश लेकर उपस्थित हुई हू।" सेविका ने मीठी राग मे अभिवादन के साथ निवेदन किया।

तभी भरत सम्राट का मन इन तीनो के मगलमय रहस्य भरे सन्देशो के प्रति प्रमुदित हो उठा। बोले ··

"कहो ! कहो ! द्वारपाल तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"महाराजाधिपनि ! आपके पिता भगवान आदिनाथ जी को कैवल्य ज्ञान की उपलब्धि हुई।"

"अरे !!!" भरत का चित्त प्रसन्नता के मारे खिल उठा ! बोले "और तुम क्या कहना चाह रहे हो सेनापति ?"

"स्वामिन् ! आपकी आयुधशाला मे आपके यश और कीर्ति से ओतप्रोत महान् व अखण्ड शासक का रूपक 'चक्ररत्न' उत्पन्न हुआ है।"

"खूब ! बहुत खूब !"… हा तो, सेविका तुम कौनसा सुखद सन्देश लेकर आई हो ?"

"प्रभो ! आपके कुल का दीपक और वश-विस्तारक महा मनोज्ञ 'सुपुत्र' का जन्म हुआ है।"

'वाह ! वाह !… बहुत ही सुखद सन्देश है।'

राजदरबार जय-जय कारो से गूज उठा। एक साथ तीन-तीन आनन्द दायक सुखद सन्देशो का सुनना बहुत ही प्रसन्नता की बात थी। तीनो को ही अमूल्य और जीवन सुखी बना देने वाला पारितोषिक दिया गया।

अयोध्या सज उठी। मधुर वाद्य बजने लगे। मगलगान गाए जाने लगे। द्वार-द्वार पर मंगल वन्दन-वार लाग रही थी। ध्वजाऐ, फहरा रही थी। और जयजय कारे की गूज सुनाई दे रही थी।

'महाराज ! आनन्द महोत्सव मनाया जाय'

'हा ! हा अवश्य।…किन्तु…'

'किन्तु का क्या प्रश्न है प्रभो।'

'पहले किसका अर्थात् किस सन्देश का उत्सव मनाया जाय…'

'पहले ! ! !' सब सभासद सोच मे पड गए।

'तभी भरत सम्राट ने सबको आदेश दिया—जाओ ! सभी सजधज के तैयार हो ओ। मगल पूजा का सामान साथ मे लो। हम पहले भगवान आदिनाथ को प्राप्त केवल्य ज्ञान का उत्सव मनाऐंगे। हमे अभी भगवान से समक्ष पहुँचना है।'

आदेश सुनकर सभी प्रसन्न हुए। अयोध्या का प्रत्येक निवासी अपने पवित्र और पूज्य भावो के साथ महाराज भरत के हाथी के

पीछे-पीछे जयजय कारो को गू जित उच्चारणो के साथ चल रहा था। सभी के भावो मे दर्शन की उमग थी, उत्साह था। और गौरव भरा अभिवादन था।

भरत ने हाथी पर चढे-चढे ही दूर से ही मगल सूचक लहराती हुई मानस्तम्भ की सर्वोच्च ध्वजा दिखाई दी। ज्यो-ज्यो हाथी आगे वढ रहा था त्यो-त्यो समवसरण (सभा मण्डप) की अनेक रमणीक और सुन्दरता से ओतप्रोत वस्तुये वेदिया, पताकाऐ, आदि दिखाई दे रही थी।

कुछ और आगे वढे ही थे कि कानो मे मधुर वाद्यो का सगीत सुनाई देने लगा। गगन मण्डल के मध्य विमान दिखाई देने लगे। पुष्प की वरसा उन विमानो मे से हो रही थी।

उस वक्त के मानव को यह एक अद्भुत और आश्चर्य कारी घटना लग रही थी। वह सम्पूर्ण दृश्य को, देखने को अत्यन्त उत्सुक हो उठा।

जव समवशरण कुछ ही दूर रह गया तो भरत हाथी पर से उतरा। अन्य सभी राजा गण अपने-अपने वाहनो से उतरे। सभी ने परोक्ष नमस्कार किया। समूह फिर से जय जय कार वोल उठा।

सभी ने देखा कि समवशरण (सभा मण्डप) विशाल है। इतना रमणीक इतना सजाधजा, इतना सौम्य। इतना विशाल समवसरण की रचना किसने की है? सभी को यह प्रश्न एक रहस्य सा उत्पन्न कर रहा था।

विशाल और सभा मण्डप से भी वहुत ऊँचा वह मानस्थम्भ सुन्दर था। अनुपम था। समवशरण मे अन्दर प्रवेश करते ही सवने देखा उपवन है, खाइया हैं, सुन्दर-सुन्दर पक्षी है, तालाव है और स्वर्ण मयी सीढिया है। वहुत ही ऊँचे और रत्नो से सजा

हुआ विशाल भगवान आदिनाथ के विराजने का सिंहासन था। जो कमल के आकार का था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कमल से ऊपर अधर भगवान आदिनाथ विराजे हुए हैं। उस कमल रूप सिंहासन के चारो ओर नीचे की ओर बारह सभा-विभाग थे। जिनमे सभी श्रोतागण बैठे हुए हैं।

आगे देखा कि बारह, सभाकक्षो मे क्रमश मुनिगण, कल्पवासी देविया, आर्यिकाएं व मनुष्य की स्त्रिया, भवनवासिनी देवियाँ, ज्योतिष्मिणी देविया, भवनवासीदेव, व्यन्तरदेव' कल्पवासी देव, मनुष्य, और पशु बैठे हुए थे।

भरत अपने पूर्ण परिवार और प्रजा के साथ आया हुआ था। प्रथम ही तो भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी। पश्चात् अपने अपने योग्य कक्ष मे जाकर स्त्री पुरुष बैठ गए ?

भगवान मौन थे। पर स्वर्ग का इन्द्र उनकी स्तुति कर रहा था। जब इन्द्र भी स्तुति कर चुका तो भरत हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर खडा हुआ, और विनिम्र वचनो से निवेदन किया कि प्रभो! हमे कुछ सतपथ राह दिखाइए" अपने उपदेशामृत से हम सभी प्राणियो की आकुलता मिटाइए।"

भगवान् आदिनाथ के साथ जब कई राजा महाराज ने दीक्षा ली थी, तो उनमे आदिनाथ के पुत्र ऋषभसैन भी थे। वे दिगम्बर ही रहे—और आज उन्होने भगवान के मुख्य गणधर का पद सुशोभित किया।

भगवान आदिनाथ के श्रीमुख से ,ॐ' शब्द की उद्घोषणा हुई। समस्त भूमण्डल, गगन मण्डल गूँज उठा। वातावरण शान्त हो उठा। मानव, दानव, देव, पशु पक्षी सभी सुन रहे थे। सभी ने जिधर से भी देखा भगवान् का दर्शन किया। अर्थात् चारो दिशा मे भगवान का मुख दिखाई दे रहा था। तभी

तो वे चतुर्मुखी ब्रह्मा कहलाए।

भगवान् आदिनाथ ने अपनी दिव्य ध्वनि मे मानव को मानवोचित कर्त्तव्य का उपदेश दिया। प्राणी मात्र के प्रति दया, प्रेम, वात्सालय का उपदेश दिया। साथ ही ससार की असारता, विनश्वरता, और परिवर्तनो का विश्लेषण भी किया।

अपनी दिव्य ध्वनि के मगल प्रसारणो मे भगवान आदिनाथ ने कहा—

यह ससार !

—भयकर भी है,

—भूल भुलैया भी है,

और

विकट भी है।

मोह, माया, मिथ्यात्व के रग मे रगा प्राणी अपनी आत्म-शक्ति को भूल जाता है। वह भूल जाता है कि—वह स्वय ही भगवान है, वह स्वय ही परमात्मा है और वह स्वय ही ईश्वर है।

वह अबोध, अज्ञानी मानव ईश्वर की खोज पत्थर मे करता है, ककर मे करता है, पेड पौधो मे करता है, और पर्वत, समुद्र, नदियो मे करता है।

पर वह उस जगह की खोज नही करता जहा उसका परमात्मा, ईश्वर, या भगवान विराजा रहता है। उसका ईश्वर तो उसके अन्दर ही रहता है। प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है। ज्ञान के विस्तार मे भेद विज्ञान पूर्वक आगे बढता हुआ अन्तत विशेष ज्ञानी ही हो जाता है। विशेष ज्ञानी के जब ज्ञान की आभा चमक उठती है तो मोह, मिथ्यात्व, माया, निदान, आदि स्वत ही दूर हो जाते हैं।

ससार की भूल भुलैया।

हाँ! इस ससार की भुल भुलैया मे मानव अपनी मानवता को तिलाजलि भी देने को तत्पर हो उठता है। वह धन, परिवार, और सम्पत्ति को ही सब कुछ मानकर, उनकी चकाचौंध मे चु धिया कर अपना पन खो बैठता है। जबकि ससार के सभी प्रसाधनो की चमक एक अस्थाई चमक है। ठीक गगन मण्डल पर छाए मेघ की विद्युत चमक की तरह।

परिवर्तन शील ससार!

हा! इस परिवर्तन शील ससार मे क्या स्थाई है? कुछ भी नही। यदि स्थाई ही होता तो इसे परिवर्तनशील की भाषा नही दी जाती। जहा परिवर्तन है वहा किसको अपना कहा जाय? क्योकि परिवर्तनता के सिद्धान्त से जो आज हमारा है वही कल नही भी हो सकता।

—आज शिशु है,
—कल बचपन है,
—परसो जवानी है,
और
तरसो बुढापा है।
फिर???

फिर मौत का बजता हुआ नक्कारा। मानव मनसूबे बनाता रहता है और परिवर्तन होता जाता है। उस परिवर्तन की बाढ मे बहकर मानव नैराश्यताकी मझधार मे वह जाता है। फिर? फिर उसके पास सिवा मृत्यु के कुछ नही रह जाता! मरता है, फिर जन्म है। मरता है और फिर जन्म है। यो मरण-जीवन परिवर्तन चलता रहता है और आत्मा कर्म आवरण मे ढकती जाती है।

किन्तु यह एक मत से नही भी कहा जा सकता। क्योकि जिस मानव ने आत्म कल्याण की भावना से स्व पर की पहचान कर ली हो, भेद विज्ञान द्वारा तृष्णा की आग को बुझाडाला हो, सयम की राह जिसने अपनाली है, त्याग को जिसने अपना लिया हो और राग-द्वेष का परित्याग जिसने कर दिया हो। वह फिर कभी भी ससार की भुलैया मे नही फसता।

वह कभी भी ससार के परिवर्तन मे नही भटकता। वह कभी भी जन्म-मरण के चक्कर नही खाता। और वही आत्मा परमात्मा बन जाती है।

जिसके हृदय मे पवित्रता हो, जिसके हृदय मे प्यार हो, वात्सल्य हो, जिसके हृदय मे साम्यता हो, जिसके हृदय मे शान्ति हो, जिसके हृदय मे निष्कपटता हो, जिसके हृदय मे विशुद्ध ज्ञान की ज्योति जल उठी हो—उसकी आत्मा का ससार का यह अस्थाई परिवर्तन कुछ भी नही कर सकता। वह ससार का विजेता होता है। वही आत्मा अमर होती है। वही आत्मा परमात्मा होती है।"

भगवान आदिनाथ की निरक्षरी वाणी खिर रही थी और सभी उस वाणी मे खो रहे थे। भावो मे लगे कीट कालिमा के जग धुल रहे थे। भावो मे पवित्रता का मधुर रस घुल रहा था। भरत, ब्राह्मी, सुन्दरी, आदि सभी भगवान की वाणी मे एक-मेक हो रहे थे समा रहे थे।

पवित्रता के रग का असर होने पर भरत को विशुद्ध सम्यक् दर्शन (श्रद्धान) की उत्पत्ति हुई।

ब्राह्मी और सुन्दरी ने सयम धारण कर आर्यिका पद प्राप्त किया। आज उन्हे अपनी प्रतीक्षा को सफल बनाने का सुअवसर प्राप्त हो गया था।

भरत का हृदय आज पवित्रता से भरा जा रहा था। सहसा भरत ने एक प्रश्न किया ··

'प्रभो। यहा जितने भी प्राणी बैठे है···उनमे से क्या कोई आप जैसा तीर्थंकर भी कभी बनेगा ?'

'हाँ ! अवश्य बनेगा। और वह है तुम्हारा पुत्र मारीच।'

'मारीच ! ! ! सभी प्रसन्नता से खिल उठे।

भगवान ने आगे बताया—

'यही मारीच अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर होगा।'

'तीर्थंकर कितने होंगे प्रभो ?'

'तीर्थंकर तेईस और होंगे।—प्रत्येक अवसर्पिणी काल मे २४ तीर्थंकर नियम से होते रहते हैं।'

'आपके बाद क्रम से कौन-कौन नाम के तीर्थंकर होंगे ?'

'क्रम पूर्वक, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्र प्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयान्स नाथ, वासुपूज्य विमलनाथ, अनन्तनाथ, धमनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर। इस प्रकार तेईस तीर्थंकर और होंगे।

सभी ने जय-जय कार का उच्चारण किया। यथाशक्ति व्रत नियम, सयम धारण करके भगवान को नमस्कार कर के अपने भावो मे पवित्रता का रस घोल-घोल कर, अनुपम और अलभ्य शान्ति लेकर भरत एव सभी सभासद अपने-अपने निवास स्थान को लौट आए।

दिव्य ध्वनि बन्द हो गई। वातावरण बिल्कुल शान्त हो गया। ईन्द्र ने भगवान से निवेदन किया कि प्रभो जन-जन का हितकारक अब आप अन्य प्रदेशो मे विहार कीजिए।

भगवान् आदिनाथ ने मगल विहार किया। जहाँ-जहा भी गए समवशरण की रचना होती और मगल कारक दिव्यध्वनि खिरती। विहार करते-करते, उपदेशामृत की बरसा करते हुए भगवान् आदिनाथ कैलाश पर्वत पर पहुंचे। जहा आपने वर्षायोग स्थापन किया।

———

८ भरत की दिग्विजय

अतुल और उत्साह से ओतप्रोत आनन्द की लहर ने अयोध्या ही को नही अपितु समस्त भूमडल को आनन्दित कर दिया। चारो ओर खुशिया ही खुशिया छा रही थी।

इधर भरत सम्राट ने अपने चक्ररत्न की पूजा की। सेना द्वारा विविध आयोजन हुए। सेना का उत्साह अनन्त गुणा वढ गया। प्रत्येक सैनिक के चहरे पर तेज, हृदय मे उमग, मन मे उत्साह, शरीर मे स्फूर्ति और पांवो मे दृढता के साथ चचलता चमक उठी थी।

उधर पुत्ररत्न के जन्मोत्सव का कार्यक्रम अपनी रगरगात्मक शैली के साथ हो रहा था। याचको को दान, देवालयो मे पूजा, राज भवन मे मगल गीत, नृत्य, आदि के आनन्द दायक कार्य हो रहे थे।

उत्साह ही उत्साह।

उमग ही उमग।

आनन्द ही आनन्द।

जिधर दृष्टि जाती है आज अयोध्या मे उधर ही प्रसन्नता से भरे चेहरो पर से मुस्कराहट के पुष्प विखर रहे थे। नव नवेली महिलाऐं आज परिया लग रही थी। बच्चा वच्चा फुदक रहा था, वृद्ध भी जवान हो रहे थे।

चारो ओर से भरत सम्राट की जय-जय कार बोली जा रही थी।

आज चक्ररत्न की उपलब्धि के पश्चात प्रथम राजदरबार लगा हुआ था। अनेकों ने चक्ररत्न की उत्पत्ति सुनकर ही भरत की आधीनता स्वीकार कर ली थी। आज वे भी राजदरबार मे विराजे हुए थे। सेनापति एव अन्य उच्चाधिकारियो ने चर्चा आगे बढाई-

"आप बडे पुण्यशाली है स्वामिन !"

"कैसे ?"

"सर्वप्रथम तो आप भगवान आदिनाथ के पुत्र, और द्वितीय-आप सौ भाइयो मे ज्येष्ठ, तृतीय-योग्यता, श्रेष्ठता, सुन्दरता, वीरता आप मे भरी हुई है। चतुर्थ आपकी आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।"

"ओह ! ......"

"महाराज' एक निवेदन प्रस्तुत करु ?"

"कहो ! कहो ! निडर होकर कहो !"

"आपको चक्ररत्न की उपलब्धि हुई तो इसका सद् उपयोग कीजिएगा !"

'आपका तात्पर्य क्या है ?"

"स्वामिन् ! भूमण्डल पर आपकी विजय अब स्वाभाविमानी बन गई है। चक्ररत्न चाहता ही दिग्विजय है।"

"ओह ! "

"प्रभो ! हमारी यही आपसे विनम्र निवेदन है कि आप कल ही दिग्विजय पर चलने का आदेश दे दे। क्यो शुभ कार्य मे देरी नही की जानी चाहिये।"

उक्त चर्चा पर भरत ने विशेप ध्यान दिया और निमित्त नैमित्तिक विचारो ने भरत के हृदय मे दिग्विजय का प्रलोभन उत्पन्न कर ही दिया। कल के प्रभात मे पूर्व दिशा की ओर प्रयाण करने का आदेश देते हुए राजदरबार का विसर्जन किया।

शरद् ऋतु की स्वच्छ और शीतल मन्द पवन युक्त चान्दनी रात

है। तारे एक नवनवेली दुल्हन की साडी पर लगे सितारो की भाति चम चमा रहे है। तारो के मध्य मे चान्द-आनन्द ग्रमृत को बिखेरता हुग्रा ग्राह्लादित हो रहा है। नदी का कल-कल मधुकर शब्द ग्रौर शीतल मन्द पवन, उत्साह मे मीठा दर्द पैदा कर रहे हैं।

सेनापति ऐसे समय मे अपनी सम्पूर्ण सेना के मध्य मे खडा हुग्रा नये-नये ग्रादेश सुना रहा था। चतुरगिणी सेना को उत्साहित कर रहा था। प्रात. के प्रयाण का सन्देश सुना रहा था।

सेनापति के ग्रोज ग्रौर उत्साह भरे वाक्यो को सुन-सुनकर प्रत्येक सैनिक उत्साहित हो उठा। चेहरो पर मूँछे तन उठी। गन झन्न हो उठा। बाहुएँ फडक उठी। जोश चमक उठा। शौर्य झलक उठा।

जय भरत ! जय भरत ! की गू ज मे रात्री का शान्त नीरव वातावरण गू जित हो उठा। सोई हुई मीठी नीद मे मस्त जनता चौक उठी ! एक दूसरे से पूछने लगे—

"क्या बात है ?"

"कहाँ ?"

"ग्ररे ! तुमने सुना नही ··यह देखो · सुनो"

"ग्ररे हा ! यह जयनाद तो महाराज भरत की सेना का है। ·· पर इस वक्त ·· ???"

"सेना की जयनाद है। क्यो ?···क्या बात है ?"

"यह तो पूछना ही पडेगा किसी से ?"

तभी पास वाले महल की खिडकी भी खुली। उसमे से किसी की गर्दन दिखाई दी। फिर जैसे उसने खिडकी बन्द करनी चाही। तभी ··

"सुनिए।"

"क्यो भाई, क्या बात है ?"

"यह जयनाद क्यो हो रही है ?"

"क्या आपको ज्ञात नही, कि प्रात होते ही भरत महाराज अपनी चतुरगिणी सेना के साथ दिग्विजय को प्रयाण कर रहे है।"

"अरे। हमे तो ज्ञात ही नही।"

"बस यही बात है। चलो सो जाओ अब।"

पर नींद किसे आये। जयनाद की गूंज तो कानो मे समायी जा रही थी। हृदय मे एक वीरता की उमग लहलहा रही थी।

इधर प्रात की वेला ने गगन के अन्धकार की छाती चीर कर पृथ्वी पर कदम रखा। उधर रणभेरी बज उठी। बिगुल बज उठा। सैनिक सज उठा। घोडे हिनहिनाने लगे। हाथी चिंघाडने लगे। रथ की ध्वजायें फहराने लगी। अस्त्र-शस्त्र चमचमाने लगे।

तभी चक्ररत्न को साथ लिये भरत महाराज का आगमन हुआ। सेना ने अभिवादन किया। चक्र को सेना के आगे किया गया। एक विशाल और सभी अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित रथ मे महाराज भरत विराजमान हुए।

रथ मे विराजते ही बिगुल बज उठा। सेना ने पुन "जय भरत" का शब्द गुंजायमान किया। सभी सैनिको ने अपने-अपने वाहन लिये और उन पर सवार हुए।

विशाल सेना ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया।

पैदल, अश्व, गज, और रथ-सेना पृथ्वी को रौंदती हुई आगे बढी। गगन मण्डल धूल से आच्छादित हो गया। घोडों की टापो, हाथियो की घन्टियो और रथो की झालरो से वातावरण एक अद्भुत प्रकार की गुंजन उत्पन्न कर रहा था।

पहाड, वन, नदियां आदि को पार करती हुई सेना गंगा के किनारे जा पहुंची। जिसने भी सुना कि महाराज भरत दिग्विजय के लिये आये हैं—उसी ने सहर्ष आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उसी ने भरत महाराज की शरण ले ली। और पूरी अपनी सेना ले कर भरत की सेना के साथ हो गया।

चक्ररत्न का प्रभाव ही ऐसा होता है कि जिसके पास भी वह होता है–विजय उसकी निश्चय होती ही है।

—क्योकि कोई भी विपक्षी उसका सामना नही कर सकता।

—क्योकि चक्ररत्न वल, वीर्य शौर्य का द्योतक होता है ।

—क्योकि चक्ररत्न पुण्य से प्राप्त उपलब्धि होती है।

—क्योकि दिग्विजयिता के यहाँ ही चक्ररत्न होता है।

—क्योकि चक्ररत्न द्वारा जिस भी शत्रु पर प्रहार किया गया कि वह शत्रु नष्ट हो जाता है।

पूर्व दिशा मे गगा का पूर्ण प्रदेश भरत ने अपने आधीन किया आधीनस्थ राजाओ महाराजाओ ने रत्न, मोती, आदि उपहार स्वरूप भरत को दिये। किसी किसी महाराजा ने अपनी कन्याये भी भेट की।

आज भरत सम्राट ने अपने सेनापति को दक्षिण की ओर चलने का आदेश दिया। सेनापति ने सभी सेना को–जो विजय प्राप्त करने के पश्चात विश्राम कर रही थी–रण-सकेत से आह्वान् किया और दक्षिण की ओर चलने का पथ, नियम, आदि को समझाया।

विगुल फिर बज उठा। सेना फिर सज उठी। जय भरत का विशद्नाद फिर गूज उठा।

विशाल नदियो, पर्वतो, गुफाओ को पार करती हुई सेना दक्षिण की ओर बढ रही थी। दक्षिण के सभी राजा महाराजा चौक उठे थे। प्रत्येक अपने अपने विचारो मे खोया हुआ था।

"हमे तो भरत महाराजा की शरण ले ही लेनी चाहिये।"

"नही! नही! हम ऐसा नही करेगे।

"हाँ क्यो करे हम भी ऐसा? आने दो रणस्थल मे, सारा निर्णय हो जायगा।

"सत्य! अटल सत्य! कायरतापूर्वक आधीन हो जाना तो राज्यकुल के विपरीत है।

हां ! हां ! कलक है।

"एक शर्म की बात है।

"सेनापति ! अपनी सेना को सजा दो।

"सैनिको ! कमर कसकर तैयार हो जाओ।

"सावधान ! अपनी सीमा की पूर्ण सुरक्षा की जाए।

"हम किसी की आधीनता स्वीकार नही करेंगे।

"कभी नही करेंगे।

आदि ! आदि बाते हो रही थी। दक्षिण के सभी राज्यधिकारी अपने अपने विचारो से अपनी अपनी बाते सोच सोचकर पक्की कर रहे थे।

भरत की सेना चक्ररत्न के पीछे पीछे आगे बढ रही थी। ज्यो ही किसी राज्य की सीमा आती भरत अपना दूत उस राज्य के राजा के पास भेज देता और जबतक दूत आकर उत्तर नही देता, सेना सीमा मे प्रवेश नही करती।

दूत जाता और भरत महाराज की सेना, चक्ररत्न व विजय आदि का हृदय पर प्रभाव डाल देने वाला वर्णन करता। जिसे सुनकर दिल दहल जाता और युद्ध करने के भाव उठ उठ कर दबते जाते।

दूत उन्हे यह भी समझाता कि यदि आप भरत महाराज के पास जाकर आधीनता स्वीकार कर लेते हैं तो आपसे आपका राज्य नही छीना जायगा। आपका राज्य तो आपको मिलेगा ही इसके साथ-साथ भरत महाराज की कृपा दृष्टि भी आपके ऊपर सदैव बनी रहेगी।

तब वह राजा सोच मे पड जाता। उसका मन कहता—

बात तो अच्छी ही है।

.. राज्य तो अपना ही रहेगा।

. .अगर भरत महाराज की कृपा दृष्टि रहती है तो समय-कुसमय

हमे सहायता तो मिल सकेगी।

. क्या बुराई है आधीनता मान लेने मे ?

. लडेगे। और अनेक मारे जायेंगे फिर भी हम जीत नही पायेगे।

..जीत भी नही पायेंगे और भरत महाराज की दृष्टि सेभी गिर जायेंगे।

...तब आधीनता मान ही लेनी चाहिए।

इस प्रकार स्वय सोच कर, मन्त्रियो, सेनापतियो से मन्त्रणा कर अनेक राजा प्रसन्नतापूर्वक भरत महाराज के समक्ष सिर झुकाए आ जाते और आधीनता मान लेते।

बहुत से ऐसे भी राजा महाराजा थे जो अपनी हैकड मे मरे जा रहे थे वे कहते–हमारे विचार अटल है। वे दूत की बात भी नही मानते। फल यह होता कि फिर युद्ध ठन जाता और वह हैकड जताने वाला राजा हार मानकर सिर झुका देता।

सेना दक्षिण की तरफ विजय का डका बजाती हुई आगे बढती ही जा रही थी। जब किनारा आ गया और आगे समुद्र दिखाई पडने लगा तो भरतने आदेश दिया कि सेना विश्राम कर लें।

दक्षिण के चोल, पाण्डय, केरल आदि देशो को आधीन करने के पश्चात् आज विशाल सेना विश्राम कर रही थी।

विशाल मडप मे सिंहासन पर महाराजा भरत गौरव के साथ विराजे हुये थे। अनेक राजा महाराजा सामने, दायें बायें बैठे हुए थे। शान्ति एव सुरक्षा की व्यवस्था सोची जा रही थी। समझाई जा रही थी।

राजा महाराजाओ ने भरत महाराज की पूजा की। अनेक बहु-मूल्य भेंट भी अर्पित की। अनेक रूपवती, गुणवती, कन्याएँ भी परणाई।

विश्राम के समय मे नृत्य, गीत हुए। सैनिको के लिये विशेष मनोरजन का आयोजन किया गया। विशाल मडप के विशाल द्वार

पर चक्ररत्न चमक रहा था। वह भरत की विजय को प्रदर्शित कर रहा था।

समय बहुत व्यतीत हो गया पर जैसे किसी को पता ही नही था। तभी बिगुल फिर बज उठा।

सेना के कान खडे हो गए। अर्थात् सेना फिर तन उठी। सेनापतियो ने आदेश दिया।

"अब सेना पश्चिमी प्रदेशो की ओर कूच करेगी। अत सावधान होकर, आगे बढे।"

सेना आगे बढ चली। जिस जिस विजय प्राप्त किए हुए शासित राज्यो से होकर सेना गुजरी वहाँ के राजा महाराजो ने सेना का स्वागत किया। उन्हे भोजन आदि कराया गया। महाराजा भरत को अनेक भेंटे दी गई।

सेना पश्चिमी प्रदेशो की सीमाओ पर से आगे बढ रही थी। सभी इन प्रदेशो के राजा महाराजाओ ने सहर्ष आधीनता स्वीकार कर ली थी। सेना बढती ही गई। पश्चिमी प्रदेश ना तो विशाल ही थे और ना ज्यादा ही। अत अल्प समय मे ही पश्चिमी प्रदेशो को आधीन कर लिया गया। सेना आगे बढती गई।

अब सेना उत्तर की ओर बढ रही थी। सिन्धुनदी का स्वच्छ व वेग सहित बहता हुआ जल भरत की सेना के पद प्रक्षालन करने लगा। उनकी लहरो ने, तरगो ने सेना के हृदय मे प्रसन्नता, उत्साह व उमग की लहरें तरगें उत्पन्न कर दी थी।

पान्चाल आदि देशो पर विजय प्राप्त हो रही थी। सहसा ही एक विशाल पर्वत सेना के समक्ष आकर जैसे खडा हो गया हो। इतना विशाल पर्वत कि जिसने आगे का रास्ता पूर्णतया रोक रखा था। सेना खडी रह गई। सेनापति भरत के आदेश की प्रतीक्षा के लिये तत्पर तैयार था।

"सेना का आज यहीं विश्राम होगा। भरत ने अपनी ओज

भरी वाणी मे आदेश दिया । सैनिक अपने वाहनो से उतर पडे, साथ ही "विश्राम विगुल" की ध्वनि गूंज उठी । असख्य सैनिक-समूह ने ध्वनि सुनकर अपने-२ डेरे जमाए और विश्राम करने लगे ।

पर्वत व पर्वत के आस पास छाए हुए वन मे लगे अनेक प्रकार मीठे, खट्टे फलो का सेना ने भोजन किया, सिन्धुनदी की सहायक नदी का मीठा जल पिया । सेना विश्राम भी कर रही थी और तत्क्षण मिलने वाले आकस्मिक आदेश के लिये तैयार भी थी । आँखे अवश्य नीद ले रही थी, मन अवश्य विश्राम की गोद मे मोद भर रहा था पर कान मिलने वाले आकस्मिक आदेश को सुनने के लिये चौकन्ने थे ।

उधर मत्री, सेनापति और महाराज भरत तीनो आगे के लिये विचार परामर्श कर रहे थे । मत्री ने कहा-"यह पर्वत तो विशाल मालूम पडता है । जैसे अजेय होकर सीना ताने सामने खडा ललकार रहा हो । सेनापति कुछ भी हो । इसे पार तो करना ही है । विजय की आशा लिये कोई भी यो घवराता नही है ।

मत्री" नही ! नही ! मैने घवराने जैसी तो कोई बात कही ही नही । मैने तो विशाल पर्वत की विशालता को कहा है ।

सेनापति' कोई भी वीर सैनिक, विजय का इच्छुक-अपने सामने किसी भी विशाल को विशाल नही समझता । वह तो उसका हर क्षण सामना करने के लिये तैयार रहता है ।

भरत सेनापति जी ! तुम सत्य कहते हो ! एक वीर योघा के लिये इतना साहस उचित ही है ।

सेनापति ' जी महाराज ! क्योकि जहाँ भी साहस मे न्यूनता आई कि योघा के कदम डगमगाने की हालत मे हो जाते हैं । और "

भरत ' और तब योघा किकर्त्तव्य विमूढ सा हो जाता है ।

सेनापति ' हाँ महाराज ! और विपक्षी को तब सुअवसर प्राप्त हो जाता है । ताकि वह लडखडाते कदमो से अनैच्छिक लाभ उठा सके ।

मन्त्री" यह सब तो ठीक है। पर अब आगे के लिये क्या आयोजन है।

सेनापति" आयोजन यही है कि आप सब यही विराजे रहे, विश्राम करे। मैं कुछ वीर योद्धाओ को साथ लेकर विशाल पर्वत की विशालता देख आता हूँ। सारे रास्तो से परिचित हो आता हूँ।

भरत " चक्ररत्न को साथ रखना।

सेनापति"' जैसी आपकी आज्ञा।

सेनापति अपने साथ चुने हुये वीर योद्धाओ को साथ लेकर उस विशाल पर्वत की ओर बढ़ने लगा। आगे-आगे चक्ररत्न, पीछे सेनापति और उसके पीछे चुने हुए वीर योद्धाओ का समूह।

जय भरत ! की गूज के साथ सेना आगे बढ रही थी। विजयार्द्ध पर्वत पर रहने वाले पशु पक्षी भयभीत से हो रहे थे। भयकर और डरावने जगली पशुओ का सामना भी सेना को करना पडा। तभी "

"ठहरो !!!" एक अदृश्य आवाज गूज उठी ! सबने चौक कर इधर उधर देखा पर कोई भी दिखाई नही दे रहा था। आवाज को एक भ्रम समझकर सेना आगे बढी ही थी कि

"ठहरो ! रूक जाओ। आगे मत बढो !!!" की आवाज पुन सुनाई दी ! अब सेनापति से न रहा गया। उसने भी ललकार कहा

"कौन है यह कायर ! जो छिप छिपकर व्यर्थ ही गरज रहा है। यदि वीर है तो सामने क्यो नही आता।"

"तुम मेरा आदेश मान लो। सामने आने से तुम्हे कोई लाभ नही मिल सकेगा। अदृश्य आवाज पुन सुनाई दी।

"क्या आदेश है तुम्हारा।" सेनापति ने पूछा।

"यही कि जैसे भी आये हो, वापिस लौट जाओ।"

"वीरो का कदम जो आगे बढ गया। वह पीछे नही हटा करता।"

—

"व्यर्थ की हठ तुम्हारे लिये हानिकारक होगी।"

"यह तो समय बतायेगा। अब जो कुछ भी कहना है सामने आकर कहो"

तभी एक विशाल काय, विकराल रूप का दानव समक्ष आया। जैसे पहाड पर एक पहाड और आ गया हो! मोटी मोटी सफेद आखे जिनमे जैसे चिराग जल रहा हो। बिखरे लम्बे काले काले शिर के बाल, हाथी से भी भारी विशाल शरीर, काला कलूटा शरीर से रग। दाँत बडे बडे जो मुह से बाहर निकलने का आतुर थे। सेनापति ने उसे देखा पर हिम्मत को परस्त नही होने दिया।

"पूछ बैठा...

कौन हो तुम ?"

"मै इस पर्वत का रक्षक—व्यन्तरदेव हूँ। अपनी विजय की है। अभिलापा से आज तक कोई भी मानव इस पर्वत पर नही आ पाया सब ने इस पर्वत को दूर से ही नमस्कार किया है। इसलिये तुमसे भी मेरा यही कहना है कि यदि तुम अपना और अपने साथियो का हित चाहते हो तो वापिस लौट जाओ" एक भयकर गरजना के साथ उस प्रत्यक्ष—दानव ने कहा। इतना सुनते ही सेनापति अट्टहास कर पडा। उसने कहा ..

"कायर देव। अपनी चुपडी बातो का यहाँ कोई प्रभाव नही होने का हट जाओ रास्ते से। वरना अपना सारा देवत्व मिट्टी मे मिलता तुम्हे देखना पडेगा।"

"क्या कहा ???" वह व्यन्तरदेव गरज उठा! बरस उठा और क्रोध की आग उगल उठा।

"यो गरजने, बरसने से भी हमारे ऊपर कुछ भी असर नही होगा। तुमसे भी विशाल विकराल मेघो की गरज, बरस से हमने हार नही मानी है। हट जाओ सामने से।"

सेनापति की इस ओज भरी वीरता भरी निडर आवाज को

सुन, सेना ने 'जय भरत' का नारा लगाया सारा पर्वत गूज उठा। बार बार जय भरत का नारा लगाया जा रहा था और उसकी प्रति-ध्वनि भी सेना का साथ दे रही थी।

"भरत !!!...व्यन्तरदेव ने भी जय भरत का नारा सुना। भरत नाम से वह पूर्ण परिचित था। उसे यह भी मालूम था कि भरत दिग्विजय के लिये निकले हुये है और अनेक जगहो को बडे बड देव-दानवो ने उसकी दासता स्वीकार भी कर ली है। वही भरत क्या यहाँ भी आया है ? वह चौकता सा पूछने लगा '' क्या भरत जी यहा आये हैं ???"

"हा ! यह सेना भरत महाराजकी है। इस पर्वत का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये, इस पार से उस पार जाने के लिये, रास्तो की जानकारी करने के लिये यह एक छोटा सा अग(सेना का) लेकर मैं 'सेनापति' आगे बढे है। पर तुम भरत का नाम सुन कर चौक क्यो गये !"

"मैं ' मैं 'हा मैं चौक ही गया ' क्या भरत भी यही कही ठहरे हुए हैं ?"

"हाँ ! वहाँ उस सिन्धु नदी की सहायक नदी का जो वह किनारा है ना ''बस उसी किनारे पर भरत जी अपनी विशाल सेना के साथ विश्राम कर रहे हैं।"

"अच्छा तो क्या आप मेरी एक बात मानेगे ?"

"कौन सी बात ?"

"यही कि मैं जरा भरत जी के दर्शन करके वापिस आता तब तक आप आगे नही बढेंगे ?"

"क्यो ???"

"क्योकि ''क्योकि इसमे आपका हित है ?"

"हम समझे नही ठीक तरह समझाओ।"

"मैं सब आपको वापिस आकर समझा दूगा।"

"कही तुम्हारे वचनो मे माया चारी तो नही है ?"

"नही ! नही ! भरत जी के आगे मै कोई माया चारी नही कर सकता ।"

"तब आप जा सकते हो। पर याद रखना हम ज्यादा प्रतीक्षा नही करेगे !"

"अजी सेनापतिजी ! मैं अभी गया और अभी आया !"

वह व्यन्तर देव वहां से हवा हो गया। भरत महाराज विश्राम कर रहे थे ! उनके रमणीक डेरे के द्वार पर सैनिक अविरल चौकन्ना हो कर पहरा दे रहा था ! देव ने उसे देखा। देव चाहता तो उस पहरेदार को मुट्ठी मे बन्द कर सकता था पर मर्यादा की आन समझ कर वह—पहरेदार के सामने आकर खडा हो गया। पहरेदार ने उस अपरिचित मानव को देखा तो चौकते हुए पूछा'''

"कौन हो तुम ?

"मैं भरत महाराज से मिलना चाहता हूँ।

"यह मेरे प्रश्न का उत्तर नही है। मैं पूछता कि तुम कौन हो ?

"मैं इस पर्वत राज का रक्षक हूँ। मैं इसी क्षण भरत महाराज से मिलना चाहूँगा।

"ठहरो। पहरेदार ने ताली बजाई। अन्दर से एक सैनिक आया। सैनिक से पहरेदार ने कहा-"महाराज श्री से निवेदन करो कि इस पर्वतराज का रक्षक आपके दर्शनो का इच्छुक हो आपके चरण छूना चाहता है।

सैनिक अन्दर गया और कुछ क्षणो के पश्चात् ही आ गया। उसने सकेत से कहा—"दर्शन कर सकते है ?

देव अंदर बढा। रमणीक और उत्तम शैया पर भरत एक करवट लिये विश्राम कर रहे थे ज्यो ही देव ने अन्दर प्रवेश किया कि उसने भरत महाराज के अभिवादन के साथ दर्शन किये और

निवेदन करने लगा—

"स्वामिन्! आपकी प्रशसा मैंने बहुत सुन ली है मुझे अपना दास स्वीकार कीजिये

"आपका परिचय? भरत महाराज ने मन्द और प्रिय मुस्कान के साथ पूछा

"मै इस विजयार्ध पर्वत का रक्षक-व्यन्तर देव हू।"

"ऐसी क्या विशेषता है इस पर्वत मे?

"स्वामिन! यह पर्वत राज रत्नो का, मणियो का, खजाना है। इसकी विशाल गुफाओ मे विशाल विपुल मात्रा मे धनराशि है। इसकी और अन्य गुफाओ मे शहर के शहर बसे हुये है। एक और रमणीक व विशाल गुफायें है जिसका द्वार विगत अनेको युगो से बन्द पडा है उसमे जिन मन्दिर, विशाल राज भवन, विशाल रमणीक उपवन है।

'वह गुफा बन्द क्यो है?'

'इसका तो मुझे मालूम नही। पर यह अनन्त काल से बन्द है। किसी ने भी इसे नही खोला।'

'क्यो नही खोला?'

'यह तो हिम्मत का काम है महाराज! कौन ऐसा वीर है, पुण्यात्मा है, धीर है जो इसे खोले। यह तो मुझसे भी नही खुलती।'

'ठीक! अब तुम क्या चाहते हो।'

'मैं आपका सेवक बनना चाहता हूँ।'

'स्वीकार किया।'

स्वीकृति सुनकर देव नाच उठा। प्रसन्नता के मारे फुदक उठा। और बार बार जय बोलने लगा। वह मारे खुशी के अभिवादन करके वापस लौटने लगा। तभी

'ठहरो।'

'जी'! [illegible] 'ठहरो' को सुनकर वापिस

लौटने वाला देव ठिठक कर रुक गया और विनम्र भावो से बोल उठा।

"जी ! क्या आदेश है ।

"सेनापति से कहना कि अपने चक्ररत्न की सहायता से उस गुफा के द्वार को खोल देना जो आज तक खुली ही नही ।

"क्या ? ? ? देव देखता ही रह गया।

"हाँ ! • और यह भी कहना कि मात्र द्वार ही खोलना है अदर नही जाना है। और तुम उसके साथ रहोगे। सारे पर्वत और रास्तो की जानकारी कराओगे।

"जैसी आज्ञा स्वामिन् ! बार-बार शिर नवाता हुआ देव वहाँ से प्रस्थान कर गया।

उधर चक्रवर्ती अविलम्ब प्रतीक्षा कर रहा था। अपनी प्रतीक्षा की दृष्टि से चक्रवर्ती ने देखा कि विशाल भीमकाय देव अपनी द्रुत गति से चला आ रहा है। उसकी गति मे चचलता है, उत्साह है, और प्रसन्नता है। अवश्य ही कोई विशेष सन्देश लेकर आ रहा है। •• सेनापति सोच ही रहा था कि वह देव समक्ष आकर झुक गया।

"अरे ! ! ! सेनापति चकित रह गया। इतनी गरज करने वाला, इतना क्रोध करने वाला यह देव इतना नम्र कैसे हो गया। तभी देव ने अपनी नजरे उठाई और विनम्र भावो से बोला—

"मैने भरत महाराज की दासता स्वीकार कर ली है। इसलिये ही उनका सेवक तो आपका भी सेवक ही हूँ।

'किन्तु' ••• सेनापति कुछ कह रहे थे पर बीच मे देव बोल उठा—

"आप किसी भी उहापोह मे ना पडिए। यह वास्तविकता है। चलिये मैं आपको पथ दिखाता हू और एक महत्व पूर्ण ग ... उन्हें भी दिखाता हूँ जिसका द्वार आपको चक्ररत्न की सहा ... रना। आगे है।

विजयार्ध पर्वत का चप्पा

"महत्व पूर्ण गुफा ? ? "

हाँ ! हा ! आप मेरे साथ आगे बढिए ।'

इस प्रकार नम्रता को धारण किये वीर देव आगे हो गया। सेनापति उसके पीछे थे। सेना सेनापति के पीछे थी। व्यन्तर देव पथ दिखाता हुआ जा रहा था। बीहड, घाटियो, वन अरण्यो से भरे इस पर्वत का पथ सत्यत दुर्गम था। भयकर और विशाल घना था।

विजयार्ध पर्वत के उस पार जाने के लिये प्रयास किया जा रहा था तभी देव ने बताया—

"ठहरिए सेनापति जी।

"क्यो ?

"यही वह गुफा का द्वार है, जिसको आप चक्ररत्न की सहायता से खोलने का प्रयास करेंगे।

"किन्तु इस गुफा का द्वार खोल देने से क्या मिलेगा।

"यही तो वह द्वार है जिसके अन्दर प्रवेश करके आप इस विशाल पर्वत के उस पार जा सकेंगे।

"अरे ! ! ! ... ...सेनापति आश्चर्य से देखता ही रह गया। सेनापति अपने हाथी पर से उतरा और उतावली से चला, जैसे क्षण भर मे ही द्वार को खोल देगा।

"अरे रे रे ! ठहरिये !" देव ने बीच मे ही रोका।

"क्यो ? मुझे क्यो रोक रहे हो। द्वार खोलना है ना।

अवश्य खोलना है। पर आपको यह भी ज्ञात होना चाहिये यहाँ पहले भी हजारो योद्धा आ चुके हैं और सब ने अपना शौर्य प्रगट पाया है पर किसी को भी सफलता नही मिली। मुंह की खाकर वापिस ही आखिर उनको जाना पडा था।

क्या यह उतना भयकर है ?

जी हाँ।

तव मुझे क्या करना होगा ?

आपके पास तो ऐसा चमत्कारिक उपाय है जिससे आपको सहज सफलता मिल सकेगी।

कौन सा ?

भूल गए ! अजी यह चक्ररत्न।

ओह ! हा ! मैं यह तो भूल ही गया था।

तो आइए चक्ररत्न की पूजा करके आगे वढिये और द्वार खोल दीजिये।

सेनापति ने भाव पूर्वक चक्ररत्न की पूजा की। और गुफा के द्वार पर जा खडा हुआ। काफी ताकत लगाई पर द्वार टस से मस भी न हुआ। सेनापति पसीनो से चूर चूर होकर नहा रहा था। दिल काँप उठा था धडकन तेज हो गई थी। पैर डगमगाने लगे थे।

ऐसी उत्साह भरी पराजय देखकर देव हँस उठा। बोला···
'यदि न खुले तो तोड दीजिये।'

तव पुन चकरत्न को नमस्कार करके अपने हाथी को द्वार के पास ले गया। हाथी ने भरपूर जोर लगाया। वह वज्र का विशाल द्वार कुछ चरमराया। और जोर लगाया गया और जोर लगाया गया .. तभी भयकर मेघ गरजने की सी ध्वनि हुई।

सेना चौक उठी। हाथी चिंघाड उठे। घोडे हिनहिना उठे। और सेनापति अपने हाथी सहित एकदम पीछे हटा।

गुफा का द्वार टूट चुका था। अन्दर से भयकर गर्म हवा वाहर निकल रही थी। देव बोला—

'चलिये। द्वार टूट गया। अव इसकी गरम हवा निकलने दीजिये। इसमे प्रवेश कर उद्‌घाटन महाराज भरत करेंगे। आगे वढिये अन्य स्थान दिखलाया जाये।

सेनापति आगे बढे। वढते ही गए। विजयार्ध पर्वत का चप्पा चप्पा देख लिया गया। वीहड और भयकर घाटियो से परिपूर्ण

प्राप्त हुआ।

रात्रि व्यतीत होते-होते वापिस सेनापति अपनी सेना सहि भरत महाराज के पास आ पहुँचे। उस वक्त भरत महाराज शय कर रहे थे। सेनापति ने भी सेना को विश्राम करने का आदेः दिया।

अन्धकार की काली कलूटी छाती को चीर कर प्राची से प्रभ की किरणें प्रकट हुई। अरण्य के रंग बिरंगे विहग गण चहचह उठे। वातावरण में महक-महक उठी। प्रभाती का बिगुल बज और सारी सेना सावधान हो एक-एक कतार में खड़ी हो गई।

महाराज भरत का जयनाद के साथ अभिवादन गाया गया।

मीठी मधुर मुस्कान को बिखरते हुए भरत महाराज ने अपने शयन मण्डप से बाहर पदार्पण किया।

जय भरत ! जय भरत !! जय भरत !!!

जय जय कारा गूंज उठा। प्रतिध्वनि से विजयार्ध पर्वत भी गूंज उठा। वन में कोमल हृदय वाले पशु-पक्षी दौड़ते नजर आने लगे।

ऊँचे मंच पर भरत महाराज विराजमान हुए। सेनापति ने विजयार्ध पर्वत का परिचय प्रस्तुत किया। द्वार को तोड़ देने की चर्चा की। विषम, दुर्गम राहों का भी विवरण दिया।

भरत महाराज ने सब कुछ सुना। तुरन्त ही चल देने का आदेश दिया गया। सेनापति ने रणभेरी बजवा दी। प्रस्थान सूचक बिगुल बजवाया गया। जिसे सुनकर सेना सतर्क हो आगे बढ़ने लगी

सेना ने विजयार्ध पर्वत की उस गुफा के द्वार पर जाकर सासें ली। भरत महाराज ने गुफा के द्वार का निरीक्षण किया। उन्होंने जान लिया कि गुफा अत्यन्त दुर्गम और भयंकर है। भरत महाराज गुफा के अंदर प्रविष्ट हुए तो भयंकर जयनाद गूंज उठी। चक्ररत्न आगे-२ बढ़ता चला। भरत महाराज के पीछे सेनापति और सेना-

पति के पीछे विशाल सेना ने गुफा में प्रवेश किया।

घना अन्धकार उस गुफा में था। गरम हवा का अब भी कुछ प्रभाव था। दुर्गन्ध और सुगन्ध की मिली जुली गंध आ रही थी। चक्ररत्न के प्रभाव से गुफा में प्रकाश हो उठा था जिसके आधार पर ही भरत महाराज आगे बढ़ते जा रहे थे।

गुफा का घना अंधकार चीरते हुए भरत अपनी विशाल सेना के साथ आगे बढ़ते ही जा रहे थे। तभी गुफा के अन्त भाग में दूर प्रकाश दिखाई दिया। सूर्य चद्रमा दिखाई देने लगे। शीतल हवा का स्पर्श भी हुआ। प्रसन्नता की लहर सब के चहरों पर छा गई। योजनों लम्बी चौड़ी भयंकर गुफा का अंत निकट आ रहा था। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाते त्यों त्यों प्रकाश विशेष दृष्टिगत होता जाता।

जय भरत! जय भरत!! जय भरत!!! का नारा पुनः गूंज उठा। सोए हुए शेर जग जग कर दहाड़ने लगे। विजय भेरी बजी जा रही थी कि तभी ...

'ठहरो।'

भयंकर गर्जना भरी एक आवाज ने सबको चौंका दिया। कौन हो सकता है? किसने ठहरने के लिये ललकारा है? आदि तरह-२ की कल्पना की जाने लगी। किंतु भरत महाराज रुके नहीं, अपितु आगे बढ़ते ही जा रहे थे। जैसे उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। तभी एक व्यक्ति, जो अपरिचित था सामने आया और कहने लगा—

'कौन हो आप? कहां जा रहे हो? यह सेना साथ में क्यों है? इस गुफा में प्रवेश करने का साहस तुम्हें मिला कहां से?' एक साथ अनेक बातें वह पूछ बैठा।

'सेनापति आगे आया और उत्तर देने लगा—हम अयोध्या से आ रहे हैं। यह सारी सेना भरत महाराज की है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं के देश प्रदेशों पर विजय प्राप्त करते हुए अब उत्तर की ओर आए हैं।...ऊपर विशाल सिंहासन पर हाथी पर

विराजे हुए सम्राट भरत हैं ।'

'कोई भी हो । यों बिना आज्ञा के किसी के प्रदेश में चोरी चोरी घुस जाना उचित नहीं है ।'

'आप कौन है ?'

'यह जो सामने आपको एक प्रदेश दिखाई दे रहा है ना ·· वह देखो···ऊँचे-२ भवन, विशाल मन्दिर के शिखर, विशाल वृक्ष और विशाल ध्वजाएँ दिखाई दे रही है ना तुम्हे ?'

'हाँ ! हाँ ! दिखाई दे रही है ?'

'यह प्रदेश हमारे महाराज का है । जिनका प्रचण्ड प्रताप चँहुदिशि उज्जवलित हो रहा । जिनकी हुकार मात्र से शेर जमीन करोदने लगता है और अपने को मरा हुआ सा समझ बैठता है । जिनके आदेश से सूर्य उगता है और छिपता है जो वीर हैं, धीर है और महादानी व रक्षक भी ।·· मैं उनका दूत हूँ ।'

'· तो अब तुम क्या चाहते हो ?'

'मुझे आज्ञा मिली है कि आपको आगे न बढने दू । आपकी सेना के द्वारा गुंजाऐ हुए जय जय कारे से ही हमारे महाराज ने अनुमान लगा लिया कि कोई आक्रमणकारी है । आप बिना रण कौशल दिखाए यों आगे नहीं बढ सकते ।'

'और यदि रण कौशल न दिखाया जाए तो ?'

'· तो आपको वापिस ही लौट जाना उचित है ।'

"दूत महोदय । क्या आपने सुना नहीं कि भरत महाराज भारत के छह खण्डों में से अधिकतर पर अपनी विजय प्राप्त कर चुके हैं । और अब शेष खण्ड पर विजय प्राप्त करना कठिन नहीं रह गया है । जाओ ! कह दो अपने महाराज से कि वे भी अपना रण कौशल दिखाने के लिये तैयार हो जावें ।"

"यह और नहीं होगा । आपने हमारे महाराज का रण कौशल अभी देखा नहीं है । आप मुँह की खाकर जावेंगे-इससे तो अच्छा

है कि जैसी आपकी शान है उसे सम्भाल कर वापिस चले जाये ?"

"चुप रहो। हम और विशेष सुनने के आदी नहीं है।" सेना पति गरज उठा।

"आपकी इच्छा।" कहकर दूत लौटने लगा। तभी सेनापति ने पुन पुकारा···

"सुनो।"

"कहिये।"

"तुम्हारे महाराज को कहना कि सद्बुद्धि धारण करे। और आकर भरत महाराज की आधीनता स्वीकार कर ले। क्यो हिंसक प्रवृति को बढावा दिया जाये ।·· और युद्ध होने पर भी अन्त मे यही होगा कि तुम्हारे महाराज को झुकना ही पडेगा।"

यह सब कुछ सुनकर दूत तिलमिला उठा। पर कर कुछ नही सका। अपने आप मे फुंकारता हुआ लौट चला । भरत महाराज ने प्रत्युत्तर आने तक के लिये सेना को वही रोक दिया।

कुछ समय पश्चात एक विशाल सेना आती हुई दिखाई दी। गगन मण्डल धूल से धूसर हो गया । घोडो की टाप भयकरता लिये हुए सुनाई देने लगी ।

बिना विचारे इस प्रदेश के राजा ने रणभेरी बजवा दी और युद्ध प्रारम्भ करवा दिया। धनुपो की झकार तरकसो की फुंकार भयकरता लिये हुये कानो को फाडे जा रही थी। भरत की सेना भी टूट पडी। अब क्या था युद्ध ने भयकरता अपना ली।

भरत के प्रतिद्वन्दी पछाड खाने लगे। उनकी सेना कुचली जाने लगी। अपनी सेना को क्षीण होती देख राजा घबरा गया और अब सुमति जागने लगी। विचारने लगा—

"अवश्य ही यह कोई महान विजेता है। महान वीर भी है। तभी तो विजयार्ध पर्वत को पार कर यहाँ आया है। इससे और ज्यादा भिडना हानिकारक ही होगा।" ऐसा विचार कर वह भरत के

चरणो मे आकर झुक गया।

युद्ध बन्द होने की भेरी और बिगुल बज उठा। सेना जहाँ की तहाँ शान्त खडी रह गयी। और आपस मे गले मिलने लगे। राजाओ ने महाराज भरत की पूजा की। अपनी कन्याऐ भेंट की।

"जय भरत !!!"...की नाद अब अनेक कण्ठो से गुंजित हो उठी। गगन मण्डल भी काप उठा।

यह उत्तराखण्ड का प्रवेश था। सेना यहाँ पर विजय प्राप्त करके आगे बढती जा रही थी। और विजय प्राप्त करती जा रही थी। कुछ ही काल मे भरत ने उत्तरा खण्ड पर भी विजय प्राप्त कर ली।

अब चारो दिशाओ के छह खण्ड पर भरत का साम्राज्य था। उत्तर शिखर पर विशाल हिमवन पर्वत पास ही था। उसकी छटा देखने सेना भी आगे बढी।

कैलाश पर्वत भी यही है। अत ज्यो ही कैलाश पर्वत निकट आया कि मानस्थम्भ दिखाई दिया। ध्वजाये फहराती हुई दिखाई देने लगी। दुन्दुभि बजने की ध्वनि सुनायी देने लगी।

"क्यो ?"

क्योकि भगवान आदिनाथ अपने समवशरण मे विराजे हुए है। विशाल व रमणीक कैलाश पर्वत पर विराजे हुए भगवान आदिनाथ तप मे लीन थे।

सभी ने भगवान आदिनाथ के दर्शन किये। पूजा की और स्तुति की।

कैलाश पर्वत पर अकृत्रिम विशाल जिन स्तम्भ के दर्शन करने की भी उत्कण्ठा हुई। भरत महाराज ने विचारा कि मैं ही छ खण्डो का विजेता हूँ। अत मेरे ही हस्ताक्षर इस स्तम्भ पर होंगे। ऐसा विचार करता हुआ भरत स्तम्भ के पास पहुँचा। पर ज्यो ही स्तम्भ को देखा तो भरत अवाक रह गया। यहाँ तो इतने हस्ताक्षर

हो रहे है कि दूसरे हस्ताक्षर करने को स्थान ही नही है । भरत का मान घट गया। तब सिर नीचा किये किसी एक का हस्ताक्षर मिटाकर अपने हस्ताक्षर किये।

अब सम्पूर्ण विजय प्राप्त करके भरत वापिस अयोध्या को लौट रहे थे। साथ मे अनेक निधियां थी। जिधर से भी प्रवेश करते ..."जय भरत ! जय भरत ! का नारा गूज उठता। भरत की पूजा की जाने लगी। भेट दी जाने लगी।

९–जब भाई से भाई भिड़ ही पड़े

"महाराज भरत दिग्विजय प्राप्त करके वापिस पधार रहे है।" ऐसी प्रिय, उत्साहवर्धक, आनन्ददायक, और मगलकारक सूचना को सुनकर अयोध्या का कनकन नाच उठा। जिधर देखो उधर ही बच्चे से लेकर वृद्ध तक के चेहरो पर प्रसन्नता की लाली छाई हुई है। प्रत्येक के हृदय मे एक नयी उमग की तरग उठ रही है। अयोध्या का द्वार-द्वार गली-गली कौना-कौना सजाया जा रहा है। स्थान-स्थान पर शहनाई स्वागत गान गा रही है।

अयोध्या का मुख्य द्वार आज फूला नही समा रहा है। असख्य नर नारियो का समूह महाराज भरत के स्वागत को आतुर हो प्रतीक्षा मे खडा है। मधुर वाद्य बज रहे है। कानो कान सुनाई न पडने वाली अनेक चर्चाओ का कोलाहल मचा हुआ है। सबके चेहरे पर प्रसन्नता, उत्साह, आनन्द और नई उमग की हिलोरे अपनी मधुर मुस्कान की फुहारे बरसा रही है।

तभी गगन मण्डल मे धूल के असख्य कण उडते नजर आये। कणो मे सात रग के पुष्प खिलते नजर आये। विजय-बिगुल की आवाज सुनाई दी जाने लगी। विजय पताकाए लहराती हुई दृष्टि गत होने लगे। 'जय भरत'। 'जय भरत' का नारा सुनाई देने लगा।

ज्यो ज्यो सभी बातें निकट होती जाने लगी त्यो त्यो ही द्वार पर खडी भीड की उत्सुकता बढने लगी। कोई हाथी पर चढकर देख रहा है। कोई घोडे पर तो कोई ऊँट पर चढकर। कोई अपनी जगह से ही ऊँचा उठ उठ कर देखने का प्रयास कर रहा है। कोई किसी के कन्धे पर चढ गया है तो कोई भवनो की छतो पर चढे हुए है।

तभी विजय सन्देश-वाहक अपने द्रुतगामी घोडे पर सवार दौडा हुआ विजय-पताका को फहराता हुआ आया। और 'जय-भरत' का नारा लगाते हुये सबको विजय का सन्देश सुनाया। असँख्य जन-समूह ने एक स्वर से आकाश की छाती को दहला देने वाला 'जय भरत' का नारा लगाया।

अयोध्या के मुख्य द्वार पर भरत अपनी विजयी सेना के साथ आ पहुंचे। चक्र-रत्न द्वार के बाहर द्वार के सामने ऐसे आ गया जैसे किसी ने उसे कील दिया हो। ना हिलना और ना झुलना।

विजय का चिह्न चक्र-रत्न सबसे पूर्व अयोध्या मे प्रवेश करे–तभी तो महाराज भरत प्रवेश कर सकते है। पर यह क्या हुआ? चक्र-रत्न द्वार पर ही अयोध्या के बाहर रुक क्यो गया? सबके चेहरे पर हवाइया उडने लगी। दिल धडकने लगा।

यह क्या हुआ?

• यह क्यो हुआ?

क्या अभी दिग्विजय नही हुई?

नही। नही। ऐसा नही हो सकता।

हा। हा। कभी भी नही हो सकता क्योकि चारो दिशाओ पर महाराज भरत ने विजय प्राप्त कर ली है।

• तब यह चक्र-रत्न अयोध्या मे प्रवेश क्यो नही करता? समझ मे नही आता।

• पूछो। पूछो। किसी ज्ञानी से पूछो।

'हां ! हां ! जरूर पूछो !

'कहो जी, आप तो ज्योतिषी है। आप ही बताइये ना क्या बात हुई ?'

'भई ! मैं भी उलझन मे पड गया।'

'अरे !!! तो क्या ··तो क्या ?'

इधर जन-समूह मे अनेक प्रकार की चर्चाओ ने जन्म ले लिया था। औरते नाक से उगली लगा लगाकर, ठोडियो को छू-छू कर अनेक बातो को मुखरित कर रही थी। भरत की विशाल सेना खामोश हो गई (जैसे विजय नही हार लेकर आई हो)। खडी की खडी रह गई। वातावरण मे चुलबुल मच गई।

महाराज भरत भी चिन्तित हो उठे। उन्होने सेनापति की ओर देखा। मन्त्रियो की ओर देखा और अनेक राजा महाराजाओ की ओर देखा किन्तु सभी निरुत्तर से थे। महाराज भरत ने तब अपने विशेषज्ञ को बुला भेजा, नीति और निमित्त विशेषज्ञ तुरन्त आया और नम्र हो खडा हो गया।

महाराज भरत ने उससे पूछा—

"बताइये ! आपकी नीति और निमित्त ज्ञान इसके विषय मे क्या कहता है ?"

"महाराज ! जान पडता है कि छहखण्ड भू-मण्डल पर अभी कोई ऐसा शेष है जिस पर आपने विजय प्राप्त नही की है ?"

"क्या मतलब ???" भरत चौक उठा।

"हा महाराज ! जहा तक मेरा अनुमान है वह यह है कि पोदनपुर के शासक आपके भ्राता बाहुबली ने आपकी आधीनता स्वीकार नही की है।"

"पर वह नहीं मानता है ?"

"मुझे ज्ञात है महाराज ! वे महान् बलशाली है। उनका

नियम हैं कि वे भगवान आदिनाथ के अतिरिक्त किसी के भी आगे मस्तक नहीं झुकायेंगे।"

"यह उनका अहंकार है।"

"कुछ भी हो। किन्तु यह सच है।"

"हमे इस सच को झूठ मे बदलना होगा।"

"मुझे तो विश्वास नहीं होता।"

इतना सुनकर भरत तिलमिला उठे। भुजाये फड़क उठीं और भौंहे तन उठीं। कड़क कर बोले—

"सेनापति!!!"

"जी महाराज।"

"सेना को आज्ञा दो कि पौदनपुर की ओर कूच करे।"

"कुछ निवेदन प्रस्तुत करूं महाराज।"

"अब क्या कहना शेष रह गया?"

"आपके भ्राता बाहुबली जी बहुत ही समझदार है, विशेष विवेकी हैं। क्यो नही हम आक्रमण करने से पूर्व अपना विशेष दूत उनकी सेवा मे भेज दे।

"क्यो? किसलिये?"

"दूत आपका सन्देश बाहुबली जी से कहेगा कि—'भरत महाराज ने दिग्विजय प्राप्त कर ली है। ऐसा कोई भी शासक शेष नही रहा है जिसने भरत महाराज की आधीनता स्वीकार की हो। अत आप भी चलकर भरत महराज की आधीनता स्वीकार करके उन्हे प्रणाम कर लीजिये।"

"सम्मति तो उचित ही है।"

"तब कहिये क्या आज्ञा है?"

"दूत को तुरन्त हमारा यही सन्देश लेकर अभी पौदनपुर भेज दो! और यह भी कह दो कि विलम्ब नही करे।"

"जैसी आज्ञा स्वामिन् ।"

सेनापति ने एक योग्य अनुभवी दूत को पौदनपुर, महाराज भरत का सन्देश लेकर भेज दिया । महाराज भरत ने अब अयोध्या के बाहर ही एक मच और विशाल मण्डप मे विश्राम किया । सेना भी यही विश्राम करने लगी ।

अयोध्या की असख्य जनता का उत्साह फीका हो गया । चक्ररत्न द्वार के बाहर अडिग हुआ जहाँ का तहाँ अमर हो रहा था ।

× × × ×

दूत महाराज भरत का सन्देश लेकर बाहुबली की सेवा मे पहुँचा । बाहुबली अपने राज्य दरबार मे उस समय विराजे हुये थे । द्वार पर खडे दरबान ने बाहुबली से निवेदन किया कि— "महाराज भरत के राजदूत आपके दर्शनो के इच्छुक हैं ।" और तभी बाहुबली ने सादर उपस्थित करने की आज्ञा प्रदान कर दी थी ।

दूत दृष्टि नीची किये हुये नम्रता से भीगा हुआ खडा था ।

बाहुबली ने अपनी मीठी मधुर-वाणी से पूछा—

"कहिये दूत महोदय ! सब कुशल तो है ?"

जैसे सितार का तार बज उठा हो । एक मधुर स्वर बज उठा हो । दूत तो पानी-पानी हो गया । कुछ भी तो न बोला गया उससे बाहुबली पूछे जा रहे थे—

"भरत जी दिग्विजय करके सकुशल तो आ गये हैं ना ?··· अब तो कोई भी भू-भाग ऐसा नही रहा होगा जिस पर उनका अधिकार नही हुआ हो ? ·· हमारे लिये क्या मगल सन्देश भेजा है उन्होंने ?· क्या कोई महान् उत्सव मनाने का आयोजन है ।"

"महाराज !" दूत अब दृढ़ता रखकर बोला—

"महाराज ! क्षमा करे ! हम तो दूत है और दूत अपने स्वामी के वचनो को निडर होकर कहता ही है। जीवन पराधीन होने से अपनी ओर से योग्य अयोग्य समझने मे असमर्थ रहता है।"

"नही ! नही ! इसमे कोई भय की बात नही। तुम निर्भय होकर स्पष्ट कहो।"

"महाराज भरत ने चारो दिशाओ मे अपनी विजय पताका को फहरा दिया है और सभी राजा-महाराजाओ ने उन्हे भेट दे-देकर प्रणाम किया है। सारा गगन मण्डल उनकी जय से गूँजाय मान हो उठा है।

'हाँ ! हाँ। कहते जाओ। रुको नही।' 'महाराज। आज हमारे महाराज भरत राजाओ के सिरताज है। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक की सभी पृथ्वी पर उनका अधिकार हो गया है। वे महान् नीतिज्ञ, विजेता, और बलशाली हैं।'

'अब तुम जो कहना चाहते हो कहो। यह सब तो मैंने सुन रखा है।

'महाराज।'''भरत महाराज का एक सन्देश आपके नाम, आपकी सेवा मे प्रस्तुत करने की मुझे आज्ञा प्रदान करे।'

'तुम्हे आज्ञा है।'

'महाराज भरत का आदेश है कि—आप अपने दिग्विजयी भ्राता के समक्ष जाकर उन्हे प्रणाम करें ? और '

'क्या केवल प्रणाम करने का ही सन्देशा है ?'

'हा महाराज ! क्योकि भूमण्डल के सभी राजाओ ने उनको सादर प्रणाम किया है।

'तो अब समझ मे आया। भरत को अभिमान हो गया है। वह चाहता है कि मैं उसके आधीन होकर रहूँ। ' क्या वह यह नही जानता कि भगवान आदिनाथ ने हम दोनो को राज्य दिया है।

और दोनो को ही राजा पद प्रदान किया है। अब भरत राजा से महाराजा बन गया है और हमे राजा भी नही रहने देना चाहता ?

'जी · जी···।'

'दूत महोदय। तुमने बहुत ही बढा चढाकर भरत की प्रशसा करदी है। पर यह प्रशसा प्रशसा नही किन्तु अभिमान की गन्ध है।

···भरत ने छह खण्ड भू पर अधिकार कर लेने के पश्चात भी विश्राम नही किया ?

···तृष्णा का लोभी भरत, मेरे छोटे से राज्य को भी हडपना चाहता है ?

···मेरा छोटा सा राज्य भी उसकी आखो मे खटकने लग गया है ?

·· पिता द्वारा दी गई भूमि को भी छीनना चाह रहा है ?'

'नही ! नही ! ऐसी बात नही।' की बीच मे ही दूत बोल उठा।

'तो फिर क्या बात है ?'

'भरत महाराज तो आपके बडे भ्राता है। आपने ज्यो ही उन्हे प्रणाम किया, वे आप पर अत्यन्त प्रसन्न होगे और आपको और भी भूमि प्रदान करदी जाएगी।'

'चुप रहो।' बाहुबली गरज उठे। बोले·· मैं तुम्हारे भरत महाराजा की तरह लोलुपी नही। लालची नही। तृष्णा का भिखारी नही। मुझे तो मेरी छोटी सी जागीर ही अच्छी है। मुझ से प्रणाम कराकर मेरा राज्य हडपने वाले भरत से कहदेना कि बाहुबली को ना राज्य की भूख है और ना वह तृष्णा का भिखारी।'

'किन्तु महाराज । इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा ।'

'मुझे यह भी मालूम है। उसको उसकी सेना पर, उसके चक्ररत्न पर... उस कुम्हार के चाक के पहिए पर उस पुण्य के कीटाणु पर उसको अभिमान सा हो गया है। जाओ। कह दो उससे कि वह अपना अन्तिम और विशेष बल का भी प्रयोग करले। हम उसका बल, उसकी सेना, उसका वह चमकता पहिया चक्र) सबको रणभूमि में देखेंगे।'

दूत फुँकारता हुआ अपना सा मुंह लिए दूना वेग के साथ प्रस्थान कर गया।

इधर बाहुबली ने अपने सेनापति को बुलाकर युद्ध सम्बन्धी मन्त्रणा शुरू करदी।

× × ×

भरत के सेनापति चिर-प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। दूत अभी तक भी सन्देशा लेकर नहीं आया था। सेनापति एक गहन सोच में डूबा हुआ अपने आपमें खो गया। वह अपने ही आप से बातें करने लगा—

लगा —

'शायद दूत आ गया है महाराज।'

'बाहुबली भी साथ है ना।'···भरत ने पूछा।

'वह तो अकेला ही आ रहा है—शायद···'

तभी दूत, पसीनो से तरबतर हाँपता सा आया। मण्डप मे प्रवेश किया और नतमस्तक होकर अभिवादन किया। सेनापति ने प्रश्न किया —

'क्या बाहुबलीजी से भेंट नही हो सकी ?'

'क्यो नही हो सकी। अवश्य हुई है।'

'तो कहो, हमारे सन्देश का प्रत्युत्तर क्या है ?'—भरत महाराज ने कुछ तनते हुए से पूछा।

'बाहुबली जी तो ···' दूत कहता हुआ घबरा रहा था। सोच रहा था कि भरत जी अभी कुपित हो उठेंगे। तभी भरत जी ने पुन पूछा—

'क्या कहा है बाहुबली ने हमारे सन्देश के प्रत्युत्तर मे ?'

'स्वामिन्।' दूत अब सब वृत्त निवेदन करने लगा—

'स्वामिन्।' बाहुबली जी ने आधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है।'

'क्यो ? ?।'

'वे स्वाभिमानी है और तृष्णा भी उनके नही है ?'

'मैं उनकी प्रशसा नही, प्रत्युत्तर पूछ रहा हूँ। कहो, उनने प्रत्युत्तर मे क्या कहा ?'

''वे आपके बल, आपके चक्र, और आपकी सेना को रणभूमि मे देखना चाहते हैं।'

'क्या ? ? ?' भरत जी मार जाए सर्प की तरह फुँकार उठे। उसकी यह हिम्मत। क्या उसे यह नही बताया कि षट्खण्ड भूका,

सर्व भाग मेरे आधीन हो चुका है।'

'यह सब कुछ बताने से पूर्व ही उन्हे ज्ञात था।'

'ओह ! ! !...... भरत भी विचारो की लहरो पर तैरने लगे। दूत नतमस्तक होकर वापिस चला गया। सेनापति ने कुछ कहना चाहा...

'महाराज !'

'ग्रॉं...... हॉं। क्या बात है ?'

'अब आपकी क्या आज्ञा हे ?'

'सेनापति जी ! सेना को आदेश दे दो कि वह पोदनपुर की ओर कूच करदे। सारी सेना को नही, कुछ अश को।'

"जैसी आज्ञा स्वामिन् !" सेनापति ने आज्ञा शिरोधार्य की। रणभेरी बज उठी ! और सेनापति के आदेश के अनुसार सेना का मुख्य अग पोदनपुर की ओर प्रस्थान कर गया।

पोदनपुर का बाहरी परकोटा विशाल और मजबूत था। चारो ओर खाईया थी। आज सारे पोदनपुर मे उत्साह भरे वातावरण की लहर छा रही थी। शहर का बच्चा बच्चा सिपाही बना हुआ था। सेना तनी हुई खडी थी। बाहुबली अपने मत्री के साथ गुप्त मन्त्रणा कर रहे थे। मन्त्री को ज्ञात था कि भरत का मुकाबिला करना अशक्य होगा.. पर बाहुबली जी भुकेंगे भी नही। तब क्या करना चाहिए ! और क्या नही करना चाहिए ! .....इस प्रकार मत्री के समक्ष दुविधा खडी थी।

तभी गुप्तचर ने सन्देश प्रस्तुत किया "भरत महाराज अपनी सेना के साथ हमारी ओर आ रहे है। उनके आगे आगे एक चमकता सा सूर्य सरीखा चक्र भी चलता आ रहा है। महाराज भरत के रथ पर ध्वजाएँ फहरा रही हैं। उनकी सेना मे जोश पूरे रग के साथ छाया हुआ है।"

"कोई बात नही?" बाहुबलीजी ने कहा। मन्त्री को सम्बोधित करते हुए कहने लगे," सेनापति को प्रस्तुत करो ?"

सेनापति कुछ ही क्षणों के पश्चात् स्वयं आ गया ? वह भी भरत की सेना के आने की बात प्रकट करने लगा और आज्ञा की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा हो गया। बाहुबली ने आदेश दिया—

'सेना को तैयार होने के लिए कह दो। वह प्रत्येक क्षण के लिए सजग रहे और हमारे आदेश की प्रतीक्षा करे। मैं समझता हूं कि वह (भरत) आक्रमण करने से पूर्व दूत को पुन भेजेंगे!"

इस प्रकार सेनापति को आदेश दे ही रहे थे कि भरत के दूत ने प्रवेश किया और कुछ कहने के लिए आज्ञा चाही। इस को प्रत्यक्ष देखकर बाहुबली मुस्करा उठे—बोले—

"अब क्या आदेश है आपके महाराज का ?"

"महाराज! वे पुन आपको अवसर दे रहे है कि सोच विचार कर रण ठाने। उनका आदेश है कि रण मे आप जीत तो सकेंगे नही फिर क्यों बात आगे बढ़ाई जाये। आप क्यो नही महाराज भरत से मिल लेते ?"

"दूत महोदय! बाहुबली गरज उठे" ज्यादा बढ बढ कर बातें सुनने का मैं आदि नही हूँ! हमे जो सोचना था—सोच लिया पर भरत जी से जाकर कह दो कि कहीं ऐसा न हो कि उनका गर्व मिट्टी मे मिल जाय! आज तक की विजय, हार मे बदल जाय। ऐसा मालूम पडता है कि उनकी नस नस मे अभिमान का जहर फैल गया है।... जाओ! ... हम ऐसी कायरता की बातें सुनना पसन्द नही करते! उनसे कहदो! कि अपनी आन मान को बचाकर वापिस लौट जाये।"

दूत अपना सा मुंह लेकर, पैर पीटता हुआ चला गया। दोनो

सेनाओ मे रण भेरी बज उठी। दोनो ओर की सेना तनी हुई, फुंकारें मार रही थी। अपने अपने स्वामी की आज्ञा सुनने को प्रत्येक क्षण सजग थी।

भरत जी के मन्त्री भी समझदार थे तो बाहुबली जी के मन्त्री भी। दोनो ने सेना की फुंकार, सेना का जोश, देखा। और विचार मग्न हो गए। अपने अपने स्वामी की आज्ञा लेकर दोनो ओर के मंत्रियो ने रण छिड़ने से पूर्व एक सुझाव सम्मेलन किया इस सम्मेलन मे उपस्थित रहे। आपसी वार्तालाप हुआ। अन्त मे एक तथ्य का निर्णय किया जिसका विवरण इस प्रकार है...

"क्योकि भरत और बाहुबली दोनो भाई भाई है, दोनो की ही सेना विशाल और विजय की आशा से भरी हुई है। अत ऐसा जान पड रहा है कि युद्ध जम कर होगा। तब अनेको नारियां विधवा हो जाऐंगी, अनेको बच्चे अनाथ हो जाएगे, अनेक माताऐं अपने पुत्र खोदेंगी और हिंसा का ताण्डव नृत्य हो उठेगा।

वीरता मे, विचारो मे, शौर्य मे दोनो भाई एक दूसरे से न्यून भी नही है। इनका आपसी मतभेद मात्र है यह राजनीतिक तथ्य भी विशेष नही। तब क्यो नही इन दोनो भाइयो पर ही जय विजय का निर्णय छोड दिया जाय ?

अत यह सुझाव निर्णीत हुआ कि सेना न लडे, हिंसा न हो, अपितु दोनो भाई द्वन्द युद्ध द्वारा अपनी जय विजय का निर्णय करले। द्वन्द्व युद्ध मे तीन बाते होगी अर्थात् द्वन्द्व युद्ध तीन प्रकार से होगा—

(१) जल युद्ध।

(२) मल्ल युद्ध।

(३) दृष्टि युद्ध।

अर्थात् वे दोनो जल मे घुसकर युद्ध करेंगे और एक दूसरे

को परास्त करेंगे। वे दोनो आपस मे कुश्ती लडेंगे और एक दूसरे को चित्त करेंगे। वे दोनो आपस मे दृष्टि मिलाएँगे और एक दूसरे की दृष्टि को डगमगाने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार तीनो युद्ध मे जिसकी विजय हो जाएगी वही विजयी कहलाएगा।'

यह सुझाव पास कर—मन्त्रियो ने दोनो भाइयो के पास अलग अलग से भेजा और सम्मति चाही। दोनो ने इस सुझाव पर गहनता से विचार किया। बाहुबली ने यह कहकर वह सुझाव पत्र वापिस कर दिया कि पहले भरत ही इसको स्वीकृति प्रदान करे। क्योकि प्रथम अवसर मैं उसे ही देना चाहता हूँ।

सुझाव पत्र भरत जी के पास ले जाया गया। भरत जी ने उसे बार बार पढा और विचार किया—"सुझाव है तो ठीक। बाहुबली मुझ से तीनो युद्धो मे मात खा जायगा—सबसे बडी मात तो मेरा चक्र ही देदेगा।" सोचकर भरत ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

भरत की स्वीकृति मिल जाने पर बाहुबली ने बिना दलील के स्वीकृति दे दी। और अब दोनो ओर की सेनाओ को युद्ध न करने का आदेश दिया गया।

सेना चौक सी गई। पोदनपुर का नागरिक चोक उठा। क्यो? क्यो क्या बात हुई? युद्ध क्यो नही हो रहा है? क्या बाहुबली जी ने पराधीनता स्वीकार कर ली? ··· पर बाहुबली जी ऐसा कभी नही कर सकते। वे पराधीनता की जंजीर कभी भी अपने राज्य के गले मे नही डाल सकते। तो ··· तो ·· फिर····· बात क्या हुई? ······प्रत्येक कोने से अनेक चर्चा मुखरित हो उठी।

तभी बिगुल बजा। चर्चाएं शान्त हो गई। हाथी पर बैठे एक हलकारे ने सूचना पढी।

'अब युद्ध सेना मे नही होगा। मारकाट नही होगी। अपितु युद्ध अब दोनो भाइयो मे होगा। अत शान्ति और निर्भयता से रहो और दोनो के मल्ल, जल और दृष्टि युद्ध को शान्ति से देखो।'

'अरे ! ! !' सेना, नागरिक, सब देखते के देखते ही रह गए। यह अनोखी घोषणा सब को चौका उठी। सब प्रसन्न हो उठे और निर्धारित स्थान पर अपार भीड जमा होने लगी। उधर दोनो भाई, तीनो-युद्ध के लिए तैयार हो रहे थे। दोनो ओर की सेनाओ, नागरिको को अपने-अपने स्वामी की विजय पर पूर्ण विश्वास था दोनो ओर से अपने-अपने स्वामी की जय की ध्वनि गू ज उठी।

दोनो ओर के दो महामन्त्री इनके निर्णायक निर्धारित हुए। युद्ध होने से पूर्व भरत के प्रधान सेनापति जय कुमार ने एकान्त मे सन्धि के लिए मत्रणा भी की। निवेदन भी किया कि भाई-भाई हो कर यो लडना शोभा की बात नही। यदि आप जैसे ज्ञानी पुरुष ही यों लडेगे तो प्रजा का क्या होगा ?

भरत ने भी विचार तो किया पर दिग्विजय का प्रलोभन शान्त न हो सका। 'अह' ने भरत को शान्त न होने दिया। सेनापति और मन्त्रियो के समझा बुझाने पर भी भरत ने अपना विचार नही बदला।

बदले भी कैसे ? जिसके हृदय पर अभिमान ने पैर धर रखा हो, जिसके विचारो मे 'अह' ने जहर घोल रखा हो, जो शान का भूखा हो भला वह कैसे हित की बात सोच सके। उसकी दृष्टि मे तो हित स्वय की विजय मे ही होता है। वह तब यह भी नही सोच पाता-कि न्याय की तुला मे क्या रखा है ?

सेनापति और वृद्ध मन्त्रियो की बात सुनकर भरत जी मात्र

अट्टहास कर उठे। बोले—

'कायर कहीं के। क्या तुमको मेरे पर विश्वास नहीं रहा? क्या मुझे तुम सबने निर्बल समझ लिया है? यदि बाहुबली अपनी इतनी आन मान रखता है तो उसे इसका मजा चखाना ही चाहिए। मेरा निर्णय अटल है। जाओ व्यवस्था कराओ।'

X X X X

सर्वप्रथम 'जल युद्ध' होना तय हुआ। गहरे और स्वच्छ शीतल पानी से भरे विशाल रमणीक कुण्ड में इस युद्ध की व्यवस्था की गई थी। योजन की नाप के विशाल विस्तृत क्षेत्र में निर्मित यह कुण्ड अत्यन्त सुन्दर था। इसके किनारे पर बने छायादार विशाल कक्षों में जन समूह-युद्ध के दृश्य को देखने को उमड रहा था। सामने मंच पर दोनों पक्ष के निर्णायक, सेनापति, व अन्य अधिकारी गण विराजे हुए थे। तभी—

'ढां! ढां!' तभी बिगुल बजा और उस विशाल कुण्ड में-जैसे कोई पहाड़ आकर गिरे हों — वैसे ही दोनों भाई उतरे। शारीरिक रचनावट की दृष्टि से भरत ठिगने और छोटे थे—पर बाहुबली विशालकाय लम्बे और ऊँचे पुरुष थे। भरत ने जल युद्ध को प्रारम्भ करते हुए पानी को बाहुबली की ओर उछालना शुरू कर दिया।

भरत जो पानी उछालता तो ऐसा ज्ञात होता जैसे समुद्र में तूफान आ गया हो। जन समूह 'जय भरत' 'जय भरत' बोल उठे। बाहुबली चुपचाप खड़े थे। पानी की मार धैर्य से सहन कर रहे थे।

बाहुबली के पक्ष के जन समूह ने भी बाहुबली को पानी उछालने को जोर-जोर से बारम्बार उकसाया गया। किन्तु बाहुबली पत्थर से बने खड़े थे। ऐसा देखकर बाहुबली के पक्ष वाले उदास

से होने लगे ।

भरत पानी उछाले जा रहा था। एक क्षण को भी साम नहीं ले रहा था। वह दोय की प्रति मूर्ति बने तूफान खड़ा कर रहा था। तभी

तभी बाहुबली ने भी अपने हाथ, पानी पर मारे। ज्यों ही पानी पर मुक्का मारा तो पानी सैकड़ो धनुष ऊपर उछल गया। भारी गरजना सी हुई। कुछ क्षणों तक बाहुबली पानी उछालते रहे तो भरत की आंखे भरने लगी और भरत ने व्याकुलता का अनुभव किया।

व्याकुल होना स्वाभाविक भी था। क्योंकि कद मे भरत छोटा और बाहुबली बड़ा था। जब भरत पानी के छींटे मारते तो वह बाहुबली के वक्षस्थल पर ही जाकर टिक जाते। किन्तु जब बाहुबली पानी की मार करता तो भरत के मुँह पर जाकर टिकता। भरत अब और भी व्याकुल होने लगा। वह बार-बार मुँह छिपाने लगा।

बाहुबली के पक्ष वाले उछल पड़े और जय बाहुबली! जयबाहुबली!! का नारा बुलन्द करने लगे। भरत की पक्ष वाले अब निराश से होने लगे। तभी

तभी भरत ने पीठ दिखादी। पानी की मार से एक दम मुँह फेर लिया। भरत ने हार मान ली थी। निर्णायकों ने बाहुबली की विजय घोषित करदी।

सारा समण्डप नाच उठा। सब ओर से भरत और बाहुबली के हार जीत की चर्चा चल रही थी।' दोनो पानी मे बाहर आए। सभी जनसमूह ने दोनो का स्वागत किया।

कुछ समयान्तर पर दृष्टि युद्ध होने वाला था। एक विशाल और रमणीक मण्डप मे इस युद्ध की व्यवस्था की गई थी। मण्डप

के ठीक सामने रत्न, मणि रचित मच था—जिस पर झालरें, मोती, और मणियो की लडिया चमक रही थी। विशाल मण्डप मे सुगन्धि प्रसारक व्यवस्था थी। जन समूह के बैठने की सुन्दर व्यवस्था थी।

मच के पास ही एक ऊँचे आसन पर सामने निर्णायको के लिए बैठने की व्यवस्था की। मण्डप मे दर्शक गणो की अपार भीड के लिए बैठने की भव्य व्यवस्था की गई थी।

समय का बिगुल बजते ही मच पर भरत और बाहुबली पहुचे। पूर्ण साज श्रृगारो से सजे हुए दोनो महेन्द्र लग रहे थे। दोनो के चहरो पर प्रसन्नता की अबीर बिखर रही थी। मच पर आते ही जन समूह ने जय-जय की ध्वनि गुजायमान करदी। सबकी दृष्टि मच पर लगी हुई थी। पीछे वाला अपने से आगे के ऊँचे सिर को थोडा नीचे करने को बाध्य कर रहा था।

युद्ध प्रारम्भ का बिगुल बजा और दोनो प्रतिद्वन्दी आमने सामने खडे हो गए। कमाल का दृश्य था यह। दोनो की दृष्टियाँ एक दूसरे की दृष्टि पर आटिकी। निर्णायको ने प्रत्येक क्षण का ध्यान रखा कि देखें किसकी पलके पहले टिमटिमा जाती हैं। क्योकि दृष्टि मिलाते रहने पर जिसकी पलके पहले टिमटिमा गई या झपक गई तो उसी की हार निश्चित थी।

क्षण बीते, पल बीते और समय बीता। दोनो एक दूसरे को हराने को उद्यत थे। भरत यहा भी व्याकुलता का अनुभव करने लगा। उसकी गरदन दुखने लगी। नेत्र भारी-भारी होने लगे। इसका कारण •

इसका कारण यह था कि भरत कद मे छोटा और बाहुबली बडा होने से नेत्र मिलाने के लिए भरत को आंखे ऊँची करनी पडी जबकि बाहुबली की आखें नीचे की ओर थी।

कब तक आँखे ऊपर उठी रहती। इस युद्ध मे भी भरत मात खाता दिखाई देने लगा। देखते ही देखते भरत के नेत्र डब डबा आए और पलके टिम टिमा उठी। भरत की हार, और बाहुबली की विजय घोषित हुई।

गगन मण्डल पुन 'जय बाहुबली' की नाद से गूंज उठा। सब ओर भरत की निन्दा और बाहुबली की सराहना हो उठी। कोई कोई कहता "" " अजी ! इस हार से क्या होता है। मल्ल युद्ध मे देखना—बाहुबली चित लेटता दिखाई देगा। भरत भी आखिर फौलाद का बना हुआ है।

कोई कहता " अरे रहने दो ! जिसने दो युद्धो मे पीठ दिखादी वह अब तीसरे मे क्या निहाल करेगा ? उसे तो हार मान ही लेनी चाहिए।

कोई कहता " सेना के बल पर ही दिग्विजय करने का सपना देखा है भरत ने, आज मालूम हुआ है कि लडभिडना क्या होता है।

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ने" की उक्ति के अनुसार विभिन्न तरह की बाते हो रही थी।

अब मल्ल युद्ध की तयारियाँ हो रही थी। विशाल अखाडा तैयार किया गया। जिसमे दोनो वीर मल्लयुद्ध के वस्त्र धारण किए आ धमके। दोनो ही जैसे बब्बर शेर हो।

मासल और गठीला शरीर देख देख कर नारियाँ स्वभावत मचल उठी। कायर थर थर काँपने लगे। वीर की बाँछे खिल उठी। दोनो का ही शरीर सुडोल, गठीला और उभरा हुआ था।

निर्णायक भी उस अखाडे मे उतरा हुआ था। दोनो को तैयार देखकर प्रारम्भ का बिगुल बज उठा। बिगुल के बजते ही

जैसे दोनों शेर दहाडकर भिड उठे।

अनेक प्रकार के दाव-पैंच जानने वाले दोनों भाई एक दूसरे को 'चित' करने की ताक में थे। मुक्कों की मार एक दूसरे पर ऐसे पड रही थी जैसे वज्र के मुग्दर बज रहे हों।

दर्शक गण बडे उत्साहित हो रहे थे। उछल रहे थे, ताली पीट रहे थे, जय बोल रहे थे और अपने अपने अनुभव के दाव पैंच का इशारा भी कर रहे थे। दर्शक इतने तल्लीन थे कि उनके मल्ल युद्ध की क्रिया को अपने मुक्कों, हाथों में उठा उठाकर हवा में मार रहे थे। किसी किसी ने तो पास में बैठे हुए के ही मुक्का 'जड' दिया।

भयंकर और दिल दहला देने वाला मल्ल युद्ध मनुष्य ही देख रहे हों सो बात नहीं—अपितु स्वर्ग के देव भी गगन-धरा से देख रहे थे।

भरत ने कमाल का वीर्य शौर्य और बल का प्रयोग किया। यद्यपि दोनों चरमशरीरी थे। पर बाहुबली विशेष भीमकाय वाले थे—अत भरत लड खडाने से लगे। पर बार बार सम्हल भी जाता। बाहुबली ने अनेक बार भरत को अवसर भी दिया पर ज्यों ही भरत सम्हलता त्यों ही बाहुबली पैंच दाव लगाकर भरत को वश में कर लेते।

देखते ही देखते बाहुबली ने भरत को अपने दोनों हाथों से कन्धे से ऊपर उठा लिया। चारों ओर से हाहाकार मच उठा। अनेक प्रकार की प्रति ध्वनियाँ सुनाई देने लगी।

भरत की हार निश्चित थी। वह तिलमिला रहा था—पर करता भी क्या? तभी बाहुबली ने भरत को पृथ्वी पर डाल दिया।

भरत एकदम खड़ा हो गया और मार खाए भयंकर सर्प की तरह फुंकारे मारने लगा। करता भी क्या ? कोई भी तो चारा नहीं था उसके पास तभी .....

तभी उन्हें अपने चक्र की याद आई। बिना सोचे समझे .. उतावले और क्रोध की आग में भूल से भरत ने चक्र—बाहुबली की ओर छोड़ दिया। चारों तरफ से हाय ! हाय ! की करुण ध्वनि कँप उठी। भरत जी ने यह क्या किया ? भरतजी ने ऐसा क्यों किया ? आदि बातें होने लगी।

निर्णायकों ने भी इसे अनुचित कहा। सब ओर से भरत की निन्दा की जा रही थी। सब स्तब्ध से खड़े थे—सबको यह चिन्ता हो उठी कि—अब बाहुबली मारे जाएँगे—क्योंकि चक्र जिस पर चल गया वह जीवित रह ही नहीं सकता।

पर यह क्या ? ... चक्र भरत के हाथ से छूटा तो बाहुबली की परिक्रमा देकर बाहुबली के हाथ में आकर रुक गया। सब ओर जय, जय की महान् नाद गूंज उठी देवगण पुष्प बरसा उठ और बाहुबली की विजय घोषित कर दी गई। भरत शरम के मारे मरा जा रहा था। वह आज महान् पराजय ले चुका था। बाहुबली मुस्करा रहे थे। तभी बाहुबली बोले ...

"शाबाश भैया। आज तुमने यह दिखा दिया है कि राज्य लोलुपता मनुष्य को कितना गिरा देती है। तुमने यह भी विचार नहीं किया कि युद्ध करके आखिर मिलेगा क्या ?

एक भाई को परास्त करके मात्र तुम्हारी लोलुपता की ही तो पूर्ति होती ... जीवन की कौन सी सफलता मिलती तुम्हें ?

चक्र चलाते वक्त यह भी तुमने नहीं विचारा कि यह चक्र जिस पर भी वार करता है—उसे मृत्यु की गोद में ही सुलाकर छोड़ता है। और तुमने मुझे मृत्यु की गोद में सुलाने के लिए ही

चक छोडा•• • क्या तुम्हारी राज्य लिप्सा ने भाई का प्रेम भी भुला दिया ?

जब तुम तीन न्यायिक युद्धो मे परास्त हो चुके थे तो मात्र अह की चादर ओढे तुम्हारे विचारो ने तुम्हे अन्याय का युद्ध करने को पुकारा और तुम हत् बुद्धि हो उठे ।

पर तुम यह नही जान सके कि यह चक्र अपने सहोदर पर, चरमशरीरी पर, मुनि पर, और परिजन पर नही चला करता । तुमने क्यो अपने विचारो को घृणित कर डाला । आज ससार मे बताओ तो कौन इस कार्य की प्रशसा कर रहा है ।

ओफ ! ! ! राज्य, सम्पदा, और थोथे मान सम्मान के लिए मानव अपनी मानवता का गला क्यो घोट बैठता है । वह क्यो अपनत्व को भूलकर जगत-जाल मे फँस जाता है ?

धिक्कार है ! धिक्कार है ! ! धिक्कार है इस ससार के प्रपच को । अनन्त समय से भटकती यह आत्मा सयोगवश मानव देह पाती है और उसे भी यह सासरिक वासनाओ की जहरीली गन्ध से यह दूषित कर बैठती है ।

धिक्कार है लोभ, लालच, लालसा और लिप्सा को ! जिसके कारण भाई भाई को मारने को तैयार है ।

धिक्कार है इस माया मोह के मिथ्या जाल को । जो मात्र छलावा है । धोखा है एक भूल भुलैया है ।

फिर भी तुमने मेरे हित मे भला कार्य किया है । तुमने मुझे सोते से जगा दिया है । तुमने मुझे ससार की असलियत दिखा दी है । तुम धन्य हो । लो, सम्हालो अपने चक्र को ! और इस काककीट सम सम्पदा को मुझे आज अपनत्व का भान हो गया है । मुझे अब करना भी क्या है ।

मै अब आत्म [illegible]ाग के पथ पर चलूगा । मै अब इन

घृणित जग कीचड से निकलना अच्छा समझता हूं।'

और देखते देखते बाहुबली जी ने उदासीनता की छाया मे वैराग्य कवच को धारण कर लिया ! बाहुबली भगवान आदिनाथ के चरणो पर गया और दीक्षित हो गया।

भरत ! वह परास्त हुआ भरत झुका जा रहा था। वह नम्र हो उठा था और अपनी भूल उसे ज्ञात हो चुकी थी। पर करे भी क्या ? खैर पोदनपुर पर विजय ध्वज फहराकर यहाँ का राज्य अपने पुत्र को देकर प्रस्थान किया ?

× × × ×

अयोध्या वासी प्रतीक्षा मे थे कि कब पोदनपुर से समाचार आए। तभी विजयपताका फहराता हुआ सन्देश वाहक आया और जय भरत ! जयभरत का नारा बुलन्द करता हुआ अयोध्या के द्वार पर आकर रुक गया।

अयोध्या वासियो ने विजय सुनी तो नाच उठे। आज अयोध्या पुन सज उठी।

मगल वेला मे भरत ने अपने विजय चक्र के साथ अयोध्या मे प्रवेश किया।

आज आनन्द और सुख की लहर अयोध्या मे छा रही थी। भरत आज छहखण्डाधिपति बनकर चक्रवर्ती हो गए थे ! भूमण्डल के कोने कोने मे भरत की ही यश-गाथा गाई जा रही थी। आज देश के कोने कोने से राजा महाराजा गण उपस्थित थे और भरत का साम्राज्याभिषेक किया जा रहा था।

रत्नजटित, स्वर्णमण्डित और भव्य व रमणीक विशाल मण्डप बनाया गया था। जिसमे लाखो की जनता से जनसमूह खचाखच भरा हुआ था। सबके चहरो पर प्रसन्नता झलको मे गौरव भरी उमग और तन पर विभिन्न आभरण वस्त्र आदि

छा रहे थे।

सर्वोच्च साम्राज्य सिंहासन पर भरत विराजे हुए थे। चमर-वाहक, पवन संचारक, एवं सुगन्धि प्रसारक, सेवक अपना अपना कार्य मुग्ध होकर कर रहे थे। आज भरत को चक्रवर्ती पद से विभूषित किया जा रहा था। अब इन्हें भरत नहीं, अपितु महाराजाधिराज चक्रवर्ती राज्य सम्पदाविभूषित भरत कहा जा रहा था।

अप्सराओं से भी सुन्दर रमणियां अपने गौर एवं नरम पैरों में मधुर झंकार की पायल बान्धे बेसुध हुई नृत्य कर रही थीं। संगीत की मधुर तान से सारा वातावरण नाच उठा था। चारों ओर एक वसन्त की बहार छा गई थी।

आज प्रकृति की प्रत्येक रचना अपनी-अपनी भाषा में संगीत सुना रही थी। पवन का मन्द मीठा राग, नदियों का सुहावना कल-कल शब्द, वृक्षों, लताओं की झूमती डालियों की मुस्कराती छटा, विपिन, उद्यान, वाटिका आदि में सहस्र रंग बिरंगे पुष्पों की खिली हुई मस्त भीनी महक और पृथ्वी पर मखमल का बिछौना बिछाए हुए नई कोमल-कोमल घास की हरियाली—सब कुछ मिलाकर मोद प्रकट कर रहे थे।

महान् पुण्य का उदय आज भरत के इर्द गिर्द, रोम रोम, में समाया हुआ था। चक्रवर्ती भरत की सम्पत्ति को भला कौन सघन शब्दों में कह सकता है?

छियानवे हजार तो जिनके रानियां थीं। इनमें से बत्तीस हजार तो भेंट में आई हुई, बत्तीस हजार देवियां, जिनको स्थान-स्थान पर देवों ने प्रस्तुत की थीं, एवं बत्तीस हजार उच्चकुल की परम्परा से गुणसम्पन्न कल्याणियां थी।

महाराज भरत के आधीन बत्तीस हजार देश थे जिनके बत्तीस हजार मुकुटबद्ध सामन्त (राजागण) महाराज भरत के

आधीन थे। इनके चौरासीलाख हाथी, चौरासी लाख ही भव्य रथ थे। अठारह करोड घोडे और चौरासी करोड पैदल सेना थी।

बत्तीन हजार देश मे बहत्तर हजार नगर और छियानवे करोड गाव थे। निन्यानवे हजार तो द्रोण मुख (बन्दरगाह) थे। अडतालीस हजार पत्तन, सोलह हजार खेट थे। छप्पन अन्तर-द्वीप थे। चौदह हजार ऐसे गाव थे जो पहाडो पर बसे हुए थे।

विस्तृत और विशाल खेतो के लिए एक लाख करोड तो 'हल' थे जिनसे खेत जोते जाते थे। तीन करोड गाएँ थी। सातसौ तो ऐसे विशाल और भव्य भवन थे, जिनमे सदैव रत्नो का व्यापार करने वाले व्यापारी ठहरा करते थे।

इनके अधिकृत अठाइस हजार वन थे। अठारह हजार म्लेच्छ राजा-महाराज भरत के सेवक थे। महाराज भरत के पास नौ निधिया थी जिनका नाम कमश काल, महाकाल, नैसर्प्य, पाण्डुक, पद्म, माणव, पिंग, शख, और सर्वरत्न था।

चौदह रत्न जिनमे सात अजीव-चक्र, छत्र, दण्ड, असि, मणि, चर्म, और काकिणी तथा सात सजीव—सेनापति, गृहपति, हाथी, घोडा, स्त्री, सिलावट और पुरोहित—पृथ्वी रक्षा और ऐश्वर्य के उपभोग करने के साधन थे।

इस प्रकार अनन्त राशि के धनी महाराज भरत आज सर्व-सम्पन्न थे। अपने साठ हजार वर्ष मे छह खण्ड भू पर दिग्विजय प्राप्त की थी और आज अयोध्या वापिस आए थे।

---

१० सम्राट भरत की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था

कोलाहल और सघर्ष के अनेक वर्ष के पश्चात आज भरत अपने ही विश्राम-कक्ष मे सुख की सेज पर विश्राम कर रहे थे। छियानवे हजार रानियो मे प्रमुख पट्टरानी महारानी 'सुभद्रा' महाराज भरत के पास ही विराजी हुई थी। आज दोनो शान्त थे, प्रसन्न थे, और गौरव की गरिमा से फूले हुए थे। दोनो अपने-अपने मोद मे लीन हो रहे थे।

सहसा सुभद्रा ने महाराज भरत के मुख की ओर निहारा तो ज्ञात हुआ कि जैसे महाराज कुछ चिन्तन के क्षणो मे खोए जा रहे है। उसने पूछा—

'क्या चिन्तवन हो रहा है स्वामिन् '

'आं। ओह ।' भरत कुछ चौके। फिर कहने लगे—'प्रिये। तुम कितनी पुण्य शालिनी हो। इतना वैभव, इतनी सम्पदा, इतना ऐश्वर्य आज तुम्हारे चरणो पर बिखरा पड़ा हुआ है।'

'पर क्या आपको ज्ञात नही कि यह पुण्य आया कहा से ?' एक मधुर मुस्कान बिखेरती हुई रानी सुभद्रा ने पूछा।

'ना ' ।' भरत ने चुप खैचते हुए कहा।

'मैं बताऊँ ?'

'हा ! हाँ अवश्य बताओ।'

'यह पुण्य आया है आपके पास से।'

'अरे ! ! !'

'चौंकिए नही प्राणाधार । आप पुण्य के भण्डार है । मैं तो आपकी दासी हू ।'

'ओह ! तो यह बात है ।' महाराज भरत विहँस उठे ! पुन पूछने लगे—

'रानी । एक बात पूछू ।'

'अवश्य पूछिए स्वामिन् ।'

'हमारे पास अटूट सम्पत्ति है । पर इसका उपयोग यदि हम उपकार मे करे तो कैसे करे ?'

'इसमे उलझन की बात ही क्या है ? प्रत्येक स्थान पर नागरिको की सुविधा के लिए विभिन्न प्रसाधन बनवा दीजिए । दानशाला खुलवा दीजिए । रक्षा-निधि के भण्डार स्थापित करवा दीजिए और याचको को मुँहमागा दान दीजिए ।'

'यह सब तो होता ही है ।'

'तो फिर क्या शेप रह गया ?'

'बताऊँ ।'

'हा । हा । अवश्य बताइए ।,

'मेरा विचार है कि एक वर्ग ऐसा बनाया जाय जो स्वय सयमी हो, पठनपाठन मे लीन हो और प्रत्येक मनुष्य को सुसंस्कृति की शिक्षा दे ।'

'उत्तम । अत्युत्तम ! ! आपका यह विचार तो महान् उत्तम है महाराज ।'

'लेकिन ऐसा वर्ग बनाया कहा से जाय ! किसको बनाया जाय ? कैसे बनाया जाय ?'

'आप इसके लिए निश्चिन्त रहिए प्रभो ! मैं एक सप्ताह के अन्दर आप की शका का समाधान ढूढ निकालने मे सफलता प्राप्त

कर लूंगी।'

'तो क्या मैं निश्चिन्त रहूँ ?'

'जी स्वामिन् ।'

'क्या मैं भी कुछ सहायता तुम्हें दे सकता हूँ ?'

अवश्य। आप कल ही पुरोहित से निमत्रण देश के प्रमुख-प्रमुख नगरो के नागरिको को दिलवा दीजिए।'

'निमत्रण ! किसबात के लिए ?'

'भोजन के लिए।'

'क्यो ? ? ?'

'यह अभी नही बताया जाएगा।'

'ओह !' भरत विहँस उठे और बोले—ठीक है, मैं अभी आपकी इस कार्यक्रमिका की सूचना मत्री को देता हूँ। जैसा भी उचित समझो कर लेना।

मत्री को बुलवा कर सुभद्रा महारानी की आज्ञा जैसी थी वह सुनादी। मत्री ने शीघ्र ही प्रमुख-प्रमुख नगरो के प्रमुख-प्रमुख नागरिको को निश्चित तिथि कर भोजननिमत्रण दिलवा दिया। ज्योहि आमत्रितो ने निमत्रण प्राप्त किया त्यो ही प्रसन्नता से भोजन मे शामिल होने की तैयारिया करने लगे।

आज वह तिथि है, जिस तिथि को विशाल भोजन व्यवस्था होनी थी। महारानी सुभद्रा ने सम्पूर्ण व्यवस्था अपने आधीन कर लीनी थी। मत्री, पुरोहित, सेवक, सेविकायें, सभी महारानी की आज्ञानुसार आमत्रितो को विश्राम करने, भोजनशाला मे बैठाने, भोजन परोसने एव स्वागत आदि की तैयारी मे थे।

हजारो उच्चकुलीय नागरिक आ चुके थे। उन्हे विशाल विश्राम कक्ष मे ठहराया गया, उनका सुरभित पुष्पमालाओ, जलपान आदि से स्वागत किया गया। भोजन शाला मे प्रवेश पाने

का निश्चित समय भी उन्हे बता दिया गया।

आज विशेष पर्व का दिन था। प्राय इस पर्व पर धार्मिक विचारो का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। समय होते ही नागरिको का समूह भोजन शाला की ओर चलने लगा। विशाल और सुव्यवस्थित भोजन शाला का मडप भव्य और रमणीक था; सभी नागरिक एक साथ बैठकर भोजन कर सकते थे।

भोजन शाला के मण्डप के बाहर हरी-हरी घास जो कि लगवाई गई थी—लहलहा रही थी। छोटे-छोटे प्राणी उस घास पर विचरने के लिए छोड दिए गए थे। जनसमूह इस कृत्रिम उद्यान के उस किनारे पर रुक गया। क्योकि इन्हे दरवान ने आगे जाने के लिए महारानी जी का आदेश पाने के लिए कहा था और अभी महारानी जी ने प्रवेश होने का आदेश नही दिया था। तभी ··

तभी महारानी जी पाण्डाल से बाहर आई और नमस्कार करके सभी नागरिको का अभिवादन किया। साथ ही भोजनशाला मे प्रवेश करने का निवेदन भी किया।

दरवान ने उन्हे प्रवेश पाने के लिए रास्ता खोल दिया। हजारो नागरिको मे से सैकडो तो घास को रोदते हुए चले गए और सैकडो जहा के तहा रुके रह गए।

चक्रवर्ती भरत यह सब कुछ देख रहे थे। पर मौन थे। महारानी जी ने रुके हुए नागरिको को भी आदेश दिया कि वे भी प्रवेश करे। बैठने की व्यवस्था विस्तृत है।

किन्तु कोई भी आगे नहीं बढा। तब भरत ने पूछा—

'आप लोग आ क्यो नही रहे हैं?'

'महाराज ··' एक नागरिक ने आगे बढकर निवेदन किया। 'महाराज। आप तो स्वय विवेकी है, दयालु और सयमी है। क्या आप भी हमे आने की आज्ञा दे रहे हैं?''

'क्यो ? ऐसी क्या बात है जो मैं आज्ञा नही दे सकता ।'

'महाराज । वैसे भी आज पर्व का दिन है और हम सब व्रती सयमी है, हम इस वनस्पति काय के जीव को रोदना नही चाहते, इस पर विचरते छोटे-छोटे जीवो को मारना नही चाहते ।'

'अरे ! ! !…' भरत चौंक से गए।

'हा राजाधिराज । भोजन की लोलुपता के लिए हम अपना व्रत (नियम) नही तोड सकते । यह सयम की आन है ।'

'अच्छी बात है—तब आप दूसरे द्वार से आ जाइए ।'

'कैसे आ सकते हैं ? उधर भी ऐसी ही घास है।

तभी महारानी सुभद्रा आई । उसने यह सब सुसवाद सुन लिया था। नम्रता और साम्य भाव से उन सबको नमस्कार किया और राज्य-भवन की ओर अपने साथ चलने का उनसे आग्रह किया।

सभी अवशेष व्रती सयमी नागरिक चले। सबको भोजन कराया। भोजन के पश्चात् विशाल सभा भवन मे हजारो की जन सख्या के मध्य महाराज भरत चक्रवर्ती ने घोषणा की—

'आज हम एक ऐसे वर्ग की स्थापना कर रहे है जो सयमी होगा, सदाचारी और निश्छल होगा। अपरिग्रह की भावना मे और भोग परिग्रह परिमाण अणुव्रत का धारी होगा। जो स्वयं

कर्त्तव्य होगा । इनके खानपान, विश्राम, विहार, पठनपाठन, आदि की व्यवस्था अपन-सबको यथा शक्ति समय-समय पर करनी है।

ऐसा ब्राह्मण (ब्रह्मचारी) वर्ग हम हमारे आगन्तुक सयमी नागरिको को जो आपके सामने इधर मच पर सादा वस्त्रो और साम्यभावो के साथ विराजे हुए है—जिन्होने स्थावर एव त्रस जीवो का घात नही करना चाहा, जिन्होने महारानी सुभद्रा का मन्तव्य समझ लिया था—और जो भोजन लोलुपता के बस मे नही थे—उन्हे कहा जा रहा है।

यह वर्ग देश के कोने-कोने मे भ्रमण करेगा। सुविचारो का प्रवाह करेगा और सयम पालने का रास्ता दिखाएगा। कोई भी वर्ग इन्हे सताएगा नही, मारेगा नही, कष्ट देगा नही, और अनादर भी करेगा नही। यह वर्ग एक महान् पूज्य होगा, आदरणीय होगा।'

यह घोषणा सुनकर जन समूह प्रसन्न हो उठा। महारानी सुभद्रा भी प्रसन्न हो उठी तो भरत भी पुलकित हो उठे। सभी ने उस वर्ग का स्वागत किया। महाराज भरत ने सब सबको सुसस्कृत कराया और यज्ञोपवति दी।

इस प्रकार चक्रवर्ती भरत ने ब्राह्मण वर्ग की स्थापना की। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग की स्थापना भगवान आदिनाथ पूर्व मे कर ही चुके थे।

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था ने जन्म लिया। प्रत्येक वर्ग अपना-अपना उत्तरदायित्व समझने लगा और एक दूसरे का हितैपी बन कर सहयोग देने लगा। ना घृणा थी, ना द्वेष था और ना विद्वेष था। सब प्रसन्न थे। व्यवस्थित थे और आनन्द मय जीवन बिता रहे थे।

महाराज भरत ने विशेष अध्ययन किया। जिसके द्वारा गृहास्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक तथ्यो को प्रस्तुत

बजवाए जायें, मंगल मिष्ठान वितरण किया जाय। मंगल गीत गाए जायें।

(९) निषद्या क्रिया—छह माह पश्चात् उत्तम आसन पर जिस पर सातिया अंकित हो—उस पर-बालक को सजा धजा कर प्रथम बार बैठाया जाय। इसी दिन मे उसे बैठे रहना सिखाया जाय।

(१०) अन्न प्राशन—नौ माह व्यतीत हो जाने पर याचकों को खिला पिलाकर, दानादि देकर—बालक को अन्न खिलायें।।

(११) व्युष्टिक्रिया—इसे वर्षवर्धन या सालगिरह भी कहते है। यह एक वर्षपर जो जन्म तिथि आती है उस दिन इष्ट बन्धुओं को निमंत्रण देना चाहिए। बच्चे का मंगल सत्कार करना चाहिए ज्योति जलानी चाहिए।

(१२) केशवाप क्रिया—पश्चात् तीसरे या पांचवें वर्ष पर उस्तरे से बालक का मुण्डन कराना चाहिए। इस क्रिया को केश वाप क्रिया कहते है।

(१३) लिपीसंख्यान क्रिया—पांचवे वर्ष मे बालक को सर्वप्रथम अक्षरों का दर्शन कराने के लिए यह क्रिया की जाती है। इस दिन सदाचारी उत्तम शिक्षक के पास बालक को भेजना चाहिए

(१६) व्रतावतरण क्रिया—पश्चात् ज्यो ही विध्याध्ययन का समय समाप्ति पर आए त्यो ही विशेष नियम जो लीए गए थे उनका परित्याग करे और साधारण व सदैव रहने वाले अणुव्रतादि ग्रहण करे।

(१७) वैवाहिकी क्रिया—समयानुकूल एव युवा होने पर ग्राहस्थ्यावस्था मे प्रवेश पाने के लिए सुन्दर दाम्पत्य बन्धन करना चाहिए। अर्थात् विवाह करना चाहिए। ताकि वश परम्परा का जन्म हो सके और जीवन सफलतापूर्वक व्यतीत हो सके।

(१८) वर्णलाभ क्रिया—विवाह पश्चात् कुल के दाग न लगे। जीवन दु खमय नबने, आचरण नष्ट न हो। इसके लिए सदैव धर्म का पालन करे। दोनो अपना-अपना कर्त्तव्य का पालन करे। इससे वर्णशुद्ध रहता है।

(१९) कुलचर्या—विवाह पश्चात् ग्राहस्थ जीवन को निर्वाध चलाने के लिए व्यापारिक कार्य करे। कुल का भरण पोपण करे। आजीविका का उद्योग करे।

(२०) गृहीशिता क्रिया—दाम्पत्य जीवन को सफल बनाता हुआ वह अपनी गृहस्थी का स्वामी बने। धर्म, अर्थ और काम की नियम से चर्चा करे।

(२१) प्रशान्ति क्रिया—पश्चात् अपने पुत्र को (जो अब तक जन्म लेकर युव हो गया होगा) गृह-भार सोप कर आप स्वय शान्ति प्राप्त करने का प्रयास करे।

(२२) गृहत्याग—परिवारिक व परिग्रहिक ममता से छुटकारा पाकर एव पुत्र पुत्रियो को समान भाग देकर उन्हे शिक्षा आदि देकर सन्यास का सा जीवन धारण करे।

(२३) दीक्षाद्य क्रिया—अभ्यास एव वुद्धि पूर्वक एकान्त चिन्तन मनन के लिए सन्यास दीक्षा ग्रहण करे।

(२४) जिनरूप प्राप्ती क्रिया—दीक्षा के उपरान्त शान्त भाव हो, निष्परिगृही हो, पुरुषो का जिन रूप (दिगम्बरत्व) धारण करे।

(२५) मौनाध्ययनवृत्तित्व—मन वचन काम की शुद्धता के लिए मौन पूर्वक रहे। समस्त शास्त्रों का अध्ययन किसी विशेष ज्ञानी के समीप रहकर करे।

इस तरह महाराज भरत ने गृहस्थ की सफलता का परिज्ञान भी अपनी जनता को कराया।

पश्चात् समस्त राजाओं के मध्य बैठे हुए महाराज भरत ने राजनीति का भी उपदेश दिया—जिससे राजा अपनी प्रजा की रक्षा कर सके। यथा—

नागरिक समाज दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो रक्षा करता है और दूसरा वह जिसकी रक्षा की जाती है।

रक्षा करने वाला शासक होता है। और रक्षा करवाने वाली शासित जनता होती है। शासक मे निम्नलिखित गुण होना आवश्यक है—

(१) धैर्यता (२) क्षमा शीलता (३) कर्मठता (४) पक्षरहित न्याय प्रियता (५) कर्त्तव्य परायणता (६) सत्यता (७) निर्लोभिता, (८) उत्साह, साहस, एव दूरदर्शिता। (९) विवेकपूर्वक विचार शीलता। (१०) वासना और विलास से निर्लिप्तता/(११) सदैव सतर्कता।

उपरोक्त ग्यारह गुण एक योग्य शासक मे होना चाहिए। जिसकी राजा (शासक) मे उपरोक्त गुणो मे से न्यूनता है तो वह टिक नही सकता। उसके प्रति प्रजा (जनता) अनेक आन्दोलन सत्याग्रह, विग्रह, आदि कार्य कर बैठते है और वह प्रत्येक की दृष्टि से गिर जाता है।

अन्त में होता यह है कि उसका पद पाने के लिए अन्य कई उत्सुक हो उठते हैं और एक दूसरे को पछाड़ने की कोशिश करते हुए हिंसक वृत्ति पर उतर जाते हैं।

शासक को, शासन करने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद अपनाने पड़ते हैं। अपने गुप्तचरों के द्वारा प्रत्येक शासित क्षेत्र की सूचना प्राप्त करते रहते हैं। सेना, आदि की सुन्दर व्यवस्था की जाती है। प्रत्येक नागरिक के हृदय में अपने क्षेत्र की रक्षा की भावना भरी जाती है—ताकि विषम विपरीत समय आने पर बच्चा-बच्चा अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए न्योछावर होने के लिए तैयार रह सके।

शासक अपनी प्रजा में पनपे अपराधों को रोकने के लिए अपराधियों को दण्ड भी देता है। पर दण्ड कठोर और हिंसक नहीं होना चाहिए। उसे दण्ड उपदेश पूर्वक दिया जाना चाहिए अपराधी को नियमित निर्धारित समय के लिए अपने अधिकार में रखा जाय उसे उसका अपराध बताया जाय। अपराध के प्रति घृणा कराई जाय और मानवीय कर्त्तव्यों से अवगत कराया जाय।

अपराध न पनपे इसके लिए शासित क्षेत्र से बेकारी, गरीबी, जुआ बाजी, वेश्या वृत्ति आदि मिटाई जाए। ऐसे कार्य कराए कि कोई भी व्यक्ति बेकार न बैठा रहे। क्योंकि बेकार बैठे रहने वाला ही अपराध करता है।

सामाजिक न्याय सबके लिए एक सा हो। किसी के साथ न पक्षपात किया जाय।

दण्डनीति,
न्यायनीति,
और

प्रजा पालन नीति, के आधार पर शासन किया जाना चाहिए। एक शासक को उस ग्वाले के समान होना चाहिए जो

हजारों गायों को निष्पक्ष भाव से चराता है, देखभाल करता है। हजारों गायों में कई गायें उदण्ड भी होती है तो वह ग्वाला उन्हें, जोर से मारता नहीं, उसके अंग भी नहीं छेदता अपितु उसको सन्तुलित दण्ड से आगे कर लेता है।

शासक का प्रभाव उसकी प्रजा पर अवश्य पड़ता है। यदि शासक न्यायी, ईमानदार, सत्यवादी, सदाचारी होगा तो उसकी प्रजा भी वैसी ही होगी क्योंकि—यथा राजा तथा प्रजा।

पूर्ण तरह से राजनीति के भेद प्रभेद समझाते हुए महाराज भरत ने अन्त में कहा—

'हे राजाओ। अपने शासित क्षेत्र को सफल और उन्नत बनाने के लिये तुम्हे अपने जीवन में सत्यता, सादगी, निर्लोभता और निष्पक्षता लानी चाहिये।

इस प्रकार महाराज भरत राजा व प्रजा को सब तरह से समझाते हुए राज्य करने लगे।

११ आज के युग का स्वप्न भरत के नेत्रों में

निद्रा गहरी छाई हुई थी।, चक्रवर्ती भरत अपने सुरभित, रमणीक, भव्य शयन कक्ष मे सो रहे थे। रात्रि का अर्द्धभाग का विसर्जन हो चुका था। चारो ओर रात्री का सन्नाटा छाया हुआ था। नीद गहरी होती जा रही थी। अर्ध रात्री पश्चात् की मन्द शीतल वायु छन-छन कर प्रकाश द्वार से प्रवेश होकर कक्ष मे छा रही थी। उस मस्त भरी वायु के झोंके के छा जाने से नीद और भी भारी होती जा रही थी। अभी भोर होने मे काफी समय था। महाराज भरत भोर होने पर मगल वाद्य और मगलस्वरण की ध्वनि सुनने पर शयन सेज पर से 'ओम् अर्हन्त' कर नाम लेते हुए उठते थे। किन्तु'

किन्तु आज अचानक ही भोर होने से भी काफी समय पूर्व ही आखे खुल गई। हृदय पटल पर एक व्याकुलता सी छा गई और अनहोनी सी बात देखकर भरत चौंक से गये।

रानिया सो रही थी। पट्टरानी सुभद्रा भी गहरी नीद मे थी। उनके नाक से सुगन्ध और सुहावनी स्वास निकल रही थी। सेहरा भोर के सागर मे डूबा मस्त सा लग रहा था। उस की [illegible] खुली हुई थी। वायु अपनी मस्ती नशा मे बिखेर रही थी। बाहर के वातावरण मे भी सुप्ती थी।

अचानक यो जग जाना और हृदय मे व्याकुलता का होना—

अवश्य ही कोई कारण रखता है। तभी तो भरत जी उदास से हो रहे हैं। क्यो ? ? ?

क्योंकि अभी-अभी उन्होंने कुछ स्वप्न देखे हैं, जो भयावह और नेष्ट मालूम होते हैं। कौन निराकरण करे इन स्वप्नो का ? भरत जी चिन्ता मे थे। तभी उन्हे भगवान् आदिनाथ का स्मरण हो आया।

प्रभाती की मगल ध्वनि गू ज उठी। चारो ओर के वातावरण मे चहल-पहल प्रारम्भ हो गई। भरत स्नानादि से निवृत्त हो, उदास मन से भगवान आदिनाथ के पास वहा पहुँचे जहा उनका समवशरण आया हुआ था।

विशाल समवशरण (सभा मडप) मे प्रवेश करके भरत ने भगवान आदिनाथ के दर्शन किए। तीन प्रदक्षिणा दी और भक्तिभाव से पूजा की। फिर मनुष्यो के कक्ष मे जा बैठे। स्तुति करने के पश्चात् भरत ने नम्र होकर पूछा—

'भगवन्! मेरी कुछ शकाये हैं जिनका समाधान चाहने को मेरा चित्त व्याकुल है। हे प्रभो! एक तो मैंने ब्राह्मण वर्ग का निर्माण किया है—सो बताइए प्रभो कि इनकी रचना मे क्या दोष है ? गुण क्या है ? और इनकी रचना योग्य हुई अथवा नही। दूसरी बात भगवन्, यह है कि मैंने आज ही रात्रि मे कुछ स्वप्न देखे है, जिनको देखने के पश्चात् चित्त व्याकुल है। हे प्रभो! क्यो मेरा चित्त व्याकुल है ?'

भरत ने निवेदन कर देने के पश्चात् जो स्वप्न देखे थे वे सुना दिये। तब भगवान ने अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा सरल समाधान इस प्रकार किया—

'हे वत्स! तूने जो ब्राह्मण वर्ग अर्थात् सयमी वर्ग की जो रचना की है वह योग्य तो है पर वह चतुर्थ काल (सतयुग) तक ही सीमित और कार्य कारी होगी। पश्चात् पचम काल (कलियुग) मे

ही सयमी (ब्राह्मण) वर्ग के लोग अहंकारी, घमण्डी, और अनैतिक आचरण के धारी हो जायेंगे। ये अपने सयम का उपयोग आत्म ध्यान मे न कर विपरीत काम करने मे लग जायेंगे। अपनी विद्वता से अनेक कदाचारी, मायाचारी शास्त्र रच-रच कर मिथ्यात्व के। भारी प्रचार करेगे। हिंसा को बढावा देंगे। अन्याय का पथ प्रदर्शित करेगे।

अब तेरे स्वप्नो का समाधान भी ध्यान से सुन!

जो तूने पर्वत पर विचरते हुए तैंवीस सिंह देखे हैं ना, उनका फल यह जान कि महावीर स्वामी को छोडकर अन्य तैंवीस तीर्थकरो के समय मे मिथ्यात से पूर्ण मतो की उत्पत्ति नही होगी।

दूसरा स्वप्न जो तूने देखा कि 'सिंह के बच्चे के पीछे हिरण का समूह है' तो इसका फल है कि—महावीर स्वामी के समय मे बहुत से कुलिगी सन्यासी साधु हो जायेंगे जो परिग्रह भी रखेंगे।

तीसरा स्वप्न जो तूने देखा कि—हाथी के भार जैसा वजन घोडे की पीठ पर है तो उसका भी यह फल जान कि—पचम काल के साधु तपश्चरण के समस्त गुणो को धारण करने मे समर्थ नही होगे।

चौथे स्वप्न मे जो तूने देखा कि 'सूखे पत्ते बकरो का समूह खा रहा है, सो इसका फल यह है कि—आगामी काल मे सदाचारी भी दुराचारी हो जायेंगे।

पांचवे स्वप्न 'हाथी के कन्धे पर बन्दर देखना' का फल ऐसा जानो कि—आगे जाकर पचम काल मे क्षत्रिय कुल नष्ट हो जाएगा और दुराचारी पृथ्वी का पालन करेंगे।

छठा स्वप्न जो तूने देखा कि—'कौवे, उल्लू को सताते हैं' सो इसका भी फल यह है कि—मनुष्य धर्म की इच्छा से जैन

मुनियो को छोडकर अन्य तापसियों के पास जावेंगे।

नाचते हुए भूत' जो तूने सातवें स्वप्न में देखे हैं उनका फल यह है कि—पचम काल मे विवेकहीन व्यन्तर देवो को ज्यादा मानेंगे और अन्ध विश्वास मे लोग रम जावेंगे।

आठवें स्वप्न 'चारो ओर से भरा, पर बीच मे सूखा तालाब' देखने से—धर्म आर्यखण्ड से हटकर म्लेच्छ खण्डो मे रह जायगा।

नौवें स्वप्न 'धूलि से मलिन रत्नो की राशि' का फल है कि पचम काल मे ऋद्धिधारी मुनि नहीं होंगे।

दसवें स्वप्न में 'बडे आदर से कुत्ते को मोदक खिलाते हुए देखना' यह फलित करता है कि मिथ्यात्वी और असयमी ब्रह्मचारी (ब्राह्मण) भी गुणी, सयमी के समान सत्कार पावेंगे।

ग्यारहवें स्वप्न मे जो तुमने देखा है ना कि 'सुन्दर बैल (बछडा) ऊँचे शब्द कर रहा है।'

'हा प्रभो। 'भरत की जिज्ञासा स्वप्नों के फल सुन-सुनकर बढती जा रही थी और अपने आप से चौंक भी रहा था।

ग्यारहवें स्वप्न का फल बताते हुए भगवान आदिनाथ ने कहा—'इसका फल यह होगा कि युवावस्था मे ही व्रत, सयम, मुनि पद आदि ठहर सकेगा—वृद्धावस्था मे नही।'

'परस्पर जाते हुए दो बैल' जो तुमने बारहवें स्वप्न मे देखे हैं उसका फल यह है कि पचम काल मे मुनि एका-विहारी नही होंगे।'

'सूर्य का मेघ पटल से घिरा हुआ देखने से फल यह होगा कि कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति पचम काल मे नहीं होगी।

चौदहवा स्वप्न जो तुमने देखा है कि 'सूखा हुआ वृक्ष खडा है'—सो हे राजन, पचम काल मे चरित्र नष्ट हो जाएगा। चरित्र का पालन गृहस्थी मे हो ही नही सकेगा।

पन्द्रहवा स्वप्न' टूटे हुए और पुराने पत्ते' देखने का फल यह है कि महाऔषधियों का रस व उपयोग नष्ट हो जाएगा।

सौलहवे स्वप्न मे जो तूने देखा है कि 'चन्द्रमा के चारो ओर घेरा (परिमण्डल) है' उसका उसका फल यह जान कि मुनियो को पचम काल मे अवधिज्ञान और मन पर्यय ज्ञान भी नही होगा।

हेवत्स। इन सब स्वप्नो का फल लम्बे समय पश्चात अर्थात् पचम काल मे घटित होगा। इस हेतु तुझे इतना व्याकुल नही होना चाहिए। फिर भी व्याकुलता को मिटाने के लिए धर्म साधन तुझे करना चाहिए।

भरत ने भगवान आदिनाथ से समाधान पाकर अपने आप मे सावधान हुआ बारम्बार नमस्कर करता हुआ वापिस अयोध्या आया।

वापिस आकर भरत ने विशेष चिन्तन मनन किया। गम्भीर मुद्रा को देखकर सभी चकित थे।

'स्वामिन्। आज आप कुछ गम्भीर मालूम पडते है? क्या मैं कारण जान सकती हू?' महारानी सुभद्रा ने विनम्रता से पूछा।

सुनकर भरत कुछ विहँसे, और सुभद्रा की ओर प्यार से निहार कर बोले—'प्रिये! यह जो वैभव, सम्पदा, एश्वर्य तुम देख रही होना "यह सब नश्वर है, विनाशवान है, मात्र पुण्य का फल है।'

'यह तो कोई नई बात नही प्रभो।'

'क्या!!! तुम्हे यह कोई नई बात नही लगी?'

'जी नही स्वामिन्।'

'क्यो!'

'क्योकि—मुझे इसका पूर्ण अनुभव पूर्वक ज्ञान है कि जो भी

नेत्रो से दिखाई देता है वह सब परिवर्तनशील है।'

'अरे ! ! !'

'चोंकिए नही प्राणेश। देखिए, पहले आप बालक थे, फिर युवा हुए और अब • '

"हाँ ! हा बोलो, अब मुझ मे क्या परिवर्तन हो गया है ?"

'स्वामिन् ! देखिए ना पहले आप राजकुमार थे, फिर राजा बने, और महाराजा बने•••तो यह परिवर्त्तन ही तो है।'

'ओह। तुम अत्यन्त समझदार नारीरत्न हो सुभद्रे। मै वह सब समझ गया हूँ जो तुम कहने वाली थी पर कह न सकी।'

महारानी सुभद्रा इतना सुनकर अपने आप मे लजा गई और-भी विनम्र हो गई।

'एक निवेदन करूँ स्वामिन्।' महानी सुभद्रा ने पुन दृष्टि झुकाए ही कहा।

'हा ! हा ! बोलो '

'स्वामिन्। आज का दिन बहुत ही महत्वशाली है कि हमे सोते से जगाया है।

'तुम्हारा मन्तव्य मैं समझा नही।'

'प्रभो। आज हमने ससार की वास्तविकता पर विचार किया है, आज हमारे हृदय मे सन्तोष का प्रादुर्भाव हुआ है, आज हमे स्वय का भान हुआ है। अत ••'

'कहती जाओ • रूको नही।'

'अत आज जी खोलकर दान दीजिए, भावो को विशेष पवित्रता के रग मे रगने के लिए धर्मार्थ कार्य कीजिए।'

'प्राणेश्वरी। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि तुमने मेरे ही मन की बात कह दी। सचमुच मैं भी यही विचार रहा था।'

'सच ! ! !'

'हा प्रिये।'

महाराज भरत ने संकेत वाद्य की ध्वनि प्रकट की और एक सेवक उपस्थित हुआ। सेवक नम्रता से मस्तक झुकाए आज्ञा पाने की जिज्ञासा रखते हुए खड़ा रह गया।

'मन्त्री जी को शीघ्र उपस्थित होने के लिए हमारा आदेश पहुंचाओ।

'जैसी आज्ञा महाराज।'

सेवक चला गया और कुछ ही समय पश्चात् मन्त्री अपने स्थान से महाराज भरत का आदेश पा चले। रास्ते भर सोचते रहे कि आज इस समय मे क्यो याद किया है? इस समय तो महाराज ने कभी भी याद नही किया। उहापोह मे उलझते सुलझते मन्त्री महोदय ने महाराज भरत के विश्राम कक्ष मे प्रवेश किया। सादर अभिवादन करने के पश्चात्—महाराज भरत द्वारा संकेतित स्थान पर बैठ गए।

'क्या आज्ञा है महाराज?'

'मन्त्री जी! महारानी जी जैसा आदेश दे उसी के अनुसार आज का कार्य क्रम बनाले।'

'मैं क्या आदेश दे सकूंगी···आपही ही आदेश दीजिएगा।···' बीच मे ही महारानी ने मुस्कराते हुए कहा।

मन्त्री को फिर व्याकुलता हुई कि कैसा आदेश है? क्या बात है? · तभी भरत ने कहा—

'सुनिए मन्त्रीवर! आज याचको को जी भर दान दिया जाय। मन्दिरो मे पूजा भजन आदि किया जाय और कोई भी अयोध्या मे भूखा न रहने पाये।'

'ऐसा ही होगा प्रभो!' मन्त्री देखता का देखता ही रह गया। उसने एक शान्ति की सास ली और जैसा भी आदेश था उसे पत्र पर अंकित किया। तथा जैसा आदेश मिला था उसी के अनुसार कार्य भी किया।

१२ राजकुमारी सुलोचना

'अरी ! तुम ! ! !'

'जी पिताजी·· मैं· '

'कहा से आ रही हो बेटी ।'

'मैं मन्दिर से पूजा करके आ ही रही हूँ । लीजिएगा···'

'यह क्या है बेटी ?

'पिताजी यह पूजा का महत्त्व से भरा फल 'आशिका' है। इसे आप नैत्रो से लगाइये, मस्तक पर लगाइये ।'

'ओह । ला बेटी · ला ।'

पिता ने आशिका ली और एक सरसरी दृष्टि अपनी पुत्री पर डाली । पुत्री अपने आप मे सिमट गई और लजाकर नतमस्तक हो अन्दर चली गई ।

पुत्री जब सामने से चली गई तो पिता गहन विचार मे डूब गये । आज काफी समय बाद इतने निकट से अपनी पुत्री को देखा था । कभी भी ऐसा सयोग ही नही बैठा था कि कुछ समय तक पिता और पुत्री आमने सामने बैठे और बाते करें ।

"इसे अब कुंवारी नहीं रहना चाहिये । यह अब विवाह योग्य हो गई है । पर पर इसके लिए इसके लायक 'वर' मिलेगा भी कहाँ ! · ·मैंने अब तक इस ओर ध्यान ही नहीं दिया । कहा ढूंढूं, किससे पूछूं कहा मिलेगा इसके लायक वर रूप से भरा, कामदेव समान 'वर' क्या इस पृथ्वी पर मिल सकेगा ? · ·ओफ· ·।"

"क्या मै अन्दर आ सकती हूँ ?"

"आँ !!!...ओह.. आओ आओ—सुप्रभा।"

"क्यो, क्या बात है ? आज तो कुछ व्याकुल से नजर आ रहे हो।"

"अब तुझे क्या बताऊँ प्रिये ! तूने देखा है कभी सुलोचना को नजदीक से ?"

"मैं तो सदैव ही देखती हू ?"

"सदैव ही देखती है ? तो फिर बता तूने क्या-क्या देखा उसमे ?"

"मैंने वह सब कुछ देखा है—जिसे देखकर आज आप व्याकुल और चिन्तित हो उठे हैं।"

"ओह ! तो फिर तुमने मुझे अब तक बताया क्यो नही था ?"

"आपको अवकाश ही कहा मिलता है—मेरी बाते सुनने का। जब अपने राज्य कार्य से निवृत्त होकर यहा पधारते है तो सिवा प्रेमालाप के और कुछ करने का, कहने का अवसर ही कहा दिया है मुझे ? जब कभी कहना भी चाहा तो आपने उसमे चित्त ही कब दिया है ?"

"कुछ भी हो सुप्रभे ! अब मुझे अहसास हो गया है कि सुलोचना कँवारी रहने लायक नही है। इसका विवाह शीघ्र कर देना ही उचित है ?"

"शीघ्र तो कर देना उचित है—पर शीघ्र ही इस योग्य लडका मिल जावेगा क्या ऐसा सम्भव है ?"

"हा ! यह भी सोचनीय तथ्य है। तब किया क्या जाय ? ..."

भारत की धर्मप्राण विशाल नगरी (काशी देश की) वाराणसी के ठीक मध्य मे एक विशाल, रमणीक और भव्य मनोहर भवन

अपनी सुन्दरता, श्रेष्ठता और उच्चता की विजयध्वजा फहराता हुआ शोभायमान हो रहा था। यह भवन यहा के धार्मिक, योग्य, राजनीति मे श्रेष्ठ और महान् विचारक राजा अकम्पन का विश्राम भवन था।

आज इसी भवन के एक कक्ष मे राजा अकम्पन प्रात की रमणीक स्वच्छ, शीतल मन्द पवन का आस्वादन ले रहे थे तभी उनकी कमल नयनी सुन्दर और शील की खान पुत्री 'सुलोचना' ने प्रवेश किया था। जो अभी अभी मन्दिर से अपनी पूजा भक्ति से निवृत्त होकर आई थी।

राजा अकम्पन की महारानी 'सुप्रभा' भी विशाल हृदय और और साक्षात् लक्ष्मी थी। इसी की उत्तम कुक्षी से सुलोचना ने जन्म लिया था।

बहुत सोच विचार के पश्चात् राजा अकपन ने अपने चारो सुयोग्य, न्यायिक सम्मति देने वाले मन्त्रियो को बुलाया। जब सब मन्त्री आ गए तो राजा ने एक ही प्रश्न उनके सामने रखा :

'सुलोचना के लिए योग्य वर कौन है ?'

इस प्रश्न को सुनकर सभी मन्त्री चौक उठे। उन्हे स्वप्न मे भी यह सम्भावना नहीं थी कि आज इस विषय पर चर्चा होगी। और आज तक इस विषय पर चर्चा हुई भी नही थी। सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। महाराज अकम्पन ने पुन उसी प्रश्न को दोहराते हुए पूछा—

'महाराज ! आपकी दृष्टि मे सुलोचना के लायक वर कौन है ?

इस पर श्रुतार्थ नामक मन्त्री ने उत्तर दिया—

'महाराज ! [illegible] ऐसे पुरुष से [illegible] चाहिए जिससे राजा का [illegible] और हमारा [illegible] हो [illegible] और हमारी पुत्री

पर सम्मान भी हो।'' मेरी सम्मति मे तो यह सम्बन्ध चक्रवर्त्ती के साथ हो जाना श्रेयकर होगा।

'नही। नही। यह उचित नही '''बीच मे दूसरे मन्त्री सिद्धार्थ ने कहा। ' सुलोचना एक सुकुमारी है और भरत वृद्ध हो चुके। यह तो निरी अनमेल सम्मति है। भरत तो क्या, अपितु यह सम्बन्ध तो उनके पुत्र अर्ककीर्ति के साथ भी नही होना चाहिए।

'क्यो ? ? ?' एक मन्त्री ने पूछा।

'क्योकि—विवाह-सम्बन्ध सदैव बराबर वालो से ही करना चाहिये ? चक्रवर्त्ती का वैभव, बडप्पन और विशाल परिवार यह सब हमारे समक्ष अन्यत्य महति बात है। विवाह सम्बन्ध वास्तविक स्नेह के लिये होता है और स्नेह बराबर वाले से ही प्राप्त हो सकता है।

अकाट्य सम्मति को सुनकर सभी मन्त्री चुप हो गए। तब तीसरे मन्त्री ने पूछा—

'तब बताइये ! आपकी राय मे किसके साथ यह सम्बन्ध किया जाय ?'

इस प्रश्न को सुनकर सिद्धार्थ नामक मन्त्री ही ने सोचकर उत्तर दिया—

'सम्बन्ध किसके साथ किया जाय —यह तो किसी ज्योतिषी से पूछकर शकुन मिलाकर जाना जा सकता है। हाँ लडके मैं बता सकता हूँ। और वे हैं—प्रभजन, रथवर, बाल, वज्रायुध और जयकुमार। ये सभी राजपुत्र है, योग्य हे, और सुलोचना के लायक भी है।'

'इससे हमारी कोई विशेष शान नही रहने की।'' ' बीच मे ही चौथे मन्त्री 'सर्वार्थ' ने अडचन डाली। उसने अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा —

'भूमि गोचरियो के साथ तो हमारा पहले ही खूब सम्बन्ध

है—अब तो हमें किसी विद्याधर के यहाँ सम्बन्ध करके शान बढानी चाहिए।'

'नही! नही!! नही!!!' जोर के साथ सिद्धार्थ मन्त्री ने दलील दी। 'विद्याधरो के साथ सम्बन्ध करने से हमें चक्रवर्ती से दुश्मनी मोल लेनी पड जायेगी। जब चक्रवर्ती हमसे पूछेगा कि-क्या भूमि गोचरियो मे कोई उत्तम वर ही नही था जो विद्याधरो के साथ सम्बन्ध किया है? तब बताइये हमारे पास क्या उत्तर होगा?'

यह तर्क सुनकर सब चुप हो गए। तभी सुमति नामक मन्त्री ने अपना एक सुझाव रखा—

'मेरा तो नयोग्य सुझाव यह है कि स्वयम्वर रचा जाय। उसमें उपस्थित होने के लिए श्रेष्ठ कुल, परिवार, योग्यता वाले राजकुमारो को आमन्त्रित किया जाय। उस स्वयम्वर मण्डप मे जिसे भी राजकुमारी सुलोचना पसन्द करले उसी के साथ सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। इससे किसी को भी विरोध नही होगा। और उत्तम परम्परा का जन्म भी हो जावेगा।'

इस सुझाव को सुनकर सब ही प्रसन्न हो गए। महाराज अकम्पन भी बहुत प्रसन्न हुए। और यह सुझाव राजा व रानी दोनो ने सहर्ष स्वीकार किया।

चेहरो पर प्रसन्नता को सिमेटे हुए सभी मन्त्रियो ने विदा लेनी चाही किन्तु महाराज अकम्पन ने उन्हे रोक कर कहा

'शुभस्य शीघ्रम्। अर्थात् शुभ कार्य को शीघ्र कर लेना ही श्रेयस्कर है। अत आज ही इस आयोजन को क्रियात्मक रूप मे परिणित करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। स्वयम्वर मडप विशाल हो, मनोहर हो, भव्य हो, और सुव्यवस्थित हो आगन्तुको के लिये निवास, प्रवास, विश्राम एव भोजनादि की उत्तम व्यवस्था हो। सभी योग्य राजकुमारो को आमन्त्रित करने के लिए मगल

पत्रिकाएँ भेजदी जाय।'

यह आदेश सुनकर सभी मन्त्रियो ने अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार कार्यक्रम का विवरण तैयार करके अपने-अपने योग्य कार्य अधिकृत किया और प्रारम्भ की ओर कदम बढाने का दृढ सकल्प लेकर विदा ली।

आज महाराज अकम्पन एव सभी मत्री गण निमत्रण पत्र भेजने की तैयारिया कर रहे है। सुन्दर एवं श्रेष्ठ पत्र पर स्वर्ण अक्षरो से अकित आदर भरे शब्द लिखे गये और यथा विधि उन्हे दूत द्वारा भेजने की व्यवस्था की।

एक दूत को सुन्दर-सुन्दर उपहार लेकर और उन उपहारो मे एक-एक निमत्रण पत्र रखकर भेजा गया।

एक दूत को जो विशिष्ट ज्ञान और अनुभव का जानकार था, शुभ सन्देश देने और स्वयम्बर मे उपस्थित होने के लिये निवेदन करने के लिये भेजा।

किसी एक दूत को मान सम्मानादि सामग्री के साथ भेजा।

इस प्रकार दशो दिशाओ मे अनेक दूत भेजे गये। वाराणसी नगरी भी इस शुभ कार्यक्रम की रचना से नाच उठी। सभी नागरिको को उस दिन की उमग भरी प्रतीक्षा लग रही थी—जिस दिन यह कार्य सम्पन्न होगा।

× × × ×

आज अभी से वाराणसी नगरी एव इसके बाहर विशाल मैदान मे बडी चहल-पहल हो रही है। सामान सजाने, लाने ले जाने आदि की दौड धूप लगी हुई है। प्रत्येक के मन मे एक उमग की तरग भरी लहरे उठ रही है। नगर के बाहर बहुत भव्य और मनोहर स्वयम्बर मण्डप की रचना की गई है। गुलाब, चम्पा, चमेली, केतकी, केवडा, मोगरा आदि के फूलो से चारो द्वारो के पथ सजे हुए है। मणिमोतियो की झालरे हिलोरें ले रही है।

स्वयम्वर मण्डप मे बीच का स्थान खाली छोडकर चारो ओर गोलाकार अवस्था मे बैठने की व्यवस्था की गई है। मखमल के गलीचे, गलीचो पर सुगन्धि की महक, और महक से भीगा हुआ मसनद, पास ही एक सुन्दर स्वर्ण, रत्न, हीरो से जडी छोटी सी चौकी-जिस पर अल्पाहार का सामान, पीने के लिए सोने की झारी मे शीतल सुगन्धित पानी और मेवा, ताम्बुल आदि रखे हुए थे। यह व्यवस्था सभी बैठने के आसनो पर थी और ऐसे आसन कोई एक हजार आठ के लगभग थे।

सामने ही एक सुन्दर मच था। जिसे कुशल चित्रकार ने चित्रित किया था। कुशल शिल्पकार ने रचना की थी और कुशल श्रृंगार कारक ने उसको सजाया था। उस पर दो आसन बहुत ही सुन्दर लगाये गये थे।

स्वयवर मण्डप के निकट ही आगन्तुक राजकुमारो के विश्राम करने की व्यवस्था थी। जिसमे ऐसी कोई सामग्री बाकी नही रही थी जो किसे खटकने लगे अर्थात् एक से एक सामग्री वहा उपस्थित थी।

सेवक गण प्रत्येक आज्ञा के लिये तत्पर खडे किये गये थे।

राजकुमार आने लग गये थे। और उन्हे ठहराने की व्यवस्था की जा रही थी।

उधर सुलोचना का तो हाल ही मत पूछो। वह तो आज लाज की मारी अपने आपमे सिमटी जा रही थी। अन्दर की उमग भरी गुदगुदी से सनी हुई मुस्कराहट चेहरे पर से फूटी जा रही थी। अग अग ना मालूम क्यो मचल रहा था—वश मे ही नहीं हो पा रहा था।

सहेलिया भी कम नही थी। वे अन्य अनुभाविक तथ्यो को बता बताकर सुलोचना की आनन्द भरी मीठी-मीठी वेदना को और जागृत कर रही थी।

प्रत्येक सुन्दर आभूषण आज उसके तन पर शोभित हो रहे थे। वैसे ही वह सौंदर्य की प्रतिमूर्ति थी—इस पर भी शृ गारादि से सजाने पर तो इन्द्राणी को भी मात देने लगी।

'हाय ! हाय ! देखो किसके भाग्य खुलते है ?'

होय ! होय ! कौन भाग्य शाली राजकुमार होगा जिसे हमारी राज दुलारी पसन्द करेगी।

'…देखते हैं किसकी सेज पर यह कोमल फूल अपनी सुरभित्त सुगन्धि बिखेरेगा ?'

" हाय। नजर न लग जाये—हमारी सहेली को। देखेंगे ' किसके सीने पर यह अपना मस्तक जाकर टिकाएगी।

'…क्या कहने। ' अन्दर ही अन्दर गुदगुदी दवाये जा रही है अरी। जरा बाहर भी टपकने दे।

कुछ भी हो। पर भूल मत जाना हमको, पिया की सेज पाकर।

' हा भई, कही ऐसा न हो कि पिया के रग मे रग कर सखियो का रग ही याद न आये।

" सुन तो राजकुमारी…देख ऐसा काम मत कर बैठना जिससे पियाजी नाराज हो जाय।

' अरे हा ! कही पिया रूठ गये तो मजा किरा-किरा हो जायेगा।'

' एक बात और सुनले "स्वयम्वर मडप मे धीरे-धीरे कदम उठाना। दृष्टि ऐसी डालना कि जिस पर भी पडे वह ' वह।

और यो अनेक आनन्द, मोद, व्यग आदि से सनी हुई बातें सुलोचना को उसकी सहेलिया कह रही थी और सुलोचना अन्दर ही अन्दर सिमटी जा रही थी।

बाराणसी नगर की सभी महिलायें आज सजधजकर महाराज अकम्पन के रणवास पर एकत्रित हो रही थी। सब आज स्वर्ग को

अप्सराये लग रही थी। विभिन्न तरह की महक से आज रानी सुप्रभा का रग महल सुरभित हो उठा था।

मगल गान, मधुर वाद्य और पायलो की मीठी सुहावनी, झनझुन ने एक विचित्र ही वातावरण बना दिया था। विवाह सम्बन्धी सभी सामग्री को महिलाये सजाने लग रही थी।

रानी सुप्रभा तो आज उमग और आनन्द मे सिमटी हुई नाच रही थी।

१३—कन्या ने अपने पति का स्वयं चयन किया

स्वयवर मण्डप खचाखच भरा हुआ है। मन लोभने और नेत्रानन्द देने वाले रमणीक आसनो पर भिन्न-भिन्न स्थानो से आये हुए राजकुमार सजे से, धजे से और खिचे से—अपने चहरो पर रोब, मुस्कराहट बिखेरे हुए विराजे हुए हैं। सब उस प्रतीक्षा की घडियो को गिन रहे है, जिस घडी मे मृगलोचनी 'सुलोचना' का प्रवेश होगा

स्वयवर मडप के चारो मुख्य द्वारो पर मगल वाद्य बज रहे है। स्वयवर मण्डप मे ठीक मध्य भाग पर विशाल और अमूल्य कालीन पर कुछ अप्सरा को भी मात देने वाली युवतिया मन-मोहक एव चित्त को झुमा देने वाला नृत्य कर रही है

दर्शक गण जिनमे पुरुष भी है, नारियाँ भी ह और युवक व युवतिया भी है—सब एक नई आशा की किरण प्राप्त करने की उत्कण्ठित अभिलाषा लिए हुए अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए है

सामने विशाल और भव्य मच पर राजा अकम्पन और रानी सुप्रभा विराजे हुए हैं—पास ही मत्री गणो के आसन है। अगल बगल और पीछे सेवक सेविकाये पखा, झारी, चँवर, छडी आदि उपसाधन लिए हुए मौन-मुस्करित मुद्रा मे खडे हुए है।

तभी बिगुल बजा। मधुर वाद्य की ध्वनि तेज हो उठी।

मीठे-मीठे घुंघरू की आवाज करता हुआ, अनेक पताकाएँ लहराता हुआ, मणि मोतियो की झालर से सजा हुआ—स्वर्ण निर्मित रथ आकर स्वयवर मण्डप के पास आकर रुका । वाद्य की तेज ध्वनि और रथ को आ जाने की पुकार सुनकर राजकुमारो के दिल धडकने लगे। मन मचलने लगे। नेत्र, दर्शन को फडकने लगे। सब सम्हरा सम्हल कर बैठने लगे। उदासी और प्रतीक्षा की व्याकुलता को मिटाने लगे।

तभी आगे आगे दासिया, पीछे कँचुकी (परिचायिका) सुलोचना को सम्हाले हुए और उसके पीछे सहेलियो का झुण्ड सभा मण्डप मे आया। सब उत्सुक हो उठे कि 'सुलोचना' को देखा जाय। पर वह तो इन सबमे घिरी हुई थी

'सुलोचना' को पिता व माता के पास ले जाया गया। सुलोचना ने दोनो को हार्दिक नमस्कार गदगद होकर किया। माता सुप्रभा ने सुलोचना को छाती से लगा लिया। ज्यो ही सुलोचना मा की छाती से लगी त्योही दोनो का दिल उमड पडा।

पुन वाद्य वज उठे। नृत्य वन्द हो गया और एक सकेतिक आदेश पढकर सुनाया गया—

"आगन्तुक प्रिय राजकुमारो एव सभासदो। आज जो आप यह आयोजन देख रहे हे वह अपने आपमे सर्वप्रथम और न्याय-कारी आयोजन है। अभी अपनी अनुभवी और विवेकशील—परिचायिका के साथ सुलोचना राजकुमारी जी अपने कोमल चरण आगे बढायेगी, परिचायिका प्रत्येक राजकुमार के पास से उसे राजकुमार का परिचय कराती हुई आगे बढाती रहेगी।

जिसभी राजकुमार को राजकुमारी जी अपनी पसन्द की प्राथमिकता देकर जयमाला पहना देगी—उसी राजकुमार के साथ—घोषणा पत्र के अनुसार विवाह कर दिया जायेगा।

इस वाद्धिक आयोजन से किसी को विरोध नही होना चाहिये और ना ही कोई अपना महत्व कम समझेगा।

अत आप सब शान्ति से विराजे रहे और आयोजन की सफलता मे सहयोग देने का कष्ट करे। धन्यवाद !

घोषणा पत्र को सुनकर विशाल स्वयम्वर मण्डप मे शान्ति छा गई। सभी राजकुमार अब और भी तनकर बैठने लगे।

अपने-आपमे सिमटी हुई, सजी-धजी सुलोचना अपने कोमल नेत्र की पलकें नीची करती हुई-परिचायिका के साथ आगे बढी। सब दर्शको और राजकुमारो की दृष्टि सुलोचना पर थी। सुलोचना अपने हाथो मे सुगन्धित पुष्पो से सजी हुई मणियो से बनी हुई सुन्दर माला लिए हुए थी।

परिचायिका एक राजकुमार के पास रुकी और परिचय देने लगी—

'राजकुमारी जी ! देखिए, ये हैं, पृथ्वी सम्राट चक्रवर्ती महाराज भरत के सुयोग्य पुत्र अर्ककीर्तिजी। आप रूपवान, ज्ञानवान है—साथ ही एक सम्राट के पुत्र भी हैं। आयु और कद भी समान हे। इसके साथ ही "

परिचायिका और कुछ कहती पर बीच मे ही सुलोचना ने 'आगे बढो' का शब्द कहकर परिचायिका का मुँह बन्द कर दिया। जो राजकुमार अर्ककीर्ति तन कर बैठे हुए थे—वे मुरझाए पुष्प के समान हो गए। सुलोचना आगे कदम उठा चुकी थी।

आगे वाले राजकुमार के पास रुक कर परिचायिका ने परिचय दिया—

'इधर देखिएगा राजकुमारी जी ! आप है महामण्डलेश्वर महाराज पृथ्वीपति' के सुपुत्र मेघरथ जी। आपके पिता महान् शासक हैं, और आप भी रणधीर, बलवीर और दिलगीर हैं। यदि आपको …'

यहा भी सुलोचना ने आगे नही बोलने दिया और कदम आगे बढा दिया। इस प्रकार अनेक राजकुमारो के पास से परिचय कराती हुई परिचायिका सुलोचना को साथ लिए आगे बढती जा रही थी। पराजित राजकुमारो के चेहरो पर हवाइया उड रही थी। इधर माता पिता व्याकुल थे कि अभी तक भी सुलोचना ने किसी को पसन्द नही किया।

एक राजकुमार के पास परिचायिका रुकी और बोली .

'इधर निहारिए राजकुमारी जी। आप हैं श्रीमान जयकुमार जी। आप अपने कुल के दीपक हैं हस्तिनापुर के महाराज सोमप्रभ के पुत्र हैं, और आपके अनेक लघु भ्राता भी हैं। आप भरत चक्रवर्ती जी के महान और विजेता सेनापति भी हैं। आप ही ने भरत चक्रवर्ती की विजय मे अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देकर योगदान दिया था। रूप मे, गुण मे और शौर्य मे आप अद्वितीय हैं। आप धर्म अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ को भली प्रकार समझ कर प्राप्त करने वाले है ..'

इधर परिचायिका परिचय दे रही थी, उधर राजकुमारी की पलकें उठी और जय कुमार की पलको मे जा समाई। दोनो एक दूसरे को निरख-निरख कर अपने ही आपमे खो रहे थे। परिचायिका क्या-क्या कह रही है—इसका दोनो को ही भान नही रहा था।

परिचायिका कहती जा रही थी पर उसका प्रतिकार कुछ भी नही पा रही थी। तभी उसने सुलोचना को झकझोर कर कहा "'आप सुन रही है ना राजकुमारी जी?'

'हा !!!' राजकुमारी चौक सी गई, और अपने आप मे सिमट गई। फिर खो गई वह जयकुमार की पलको में।

अरे ! ! ! आप फिर चुप रह गई" कहिए' 'कहिए ''क्या आप '

'हाँ ! हाँ ! मुझे जयकुमार जी भा गए है।' परिचायिका को आगे नही बोलने दिया और इतना ही कहकर सुलोचना ने जयमाला जयकुमार के गले मे डाल दी।

चारो ओर से विजयध्वनि गूंज उठी। जयकुमार की जय का नारा गूंज उठा और सभी धन्य-धन्य कहने लगे। वातावरण मे अनेक बातों ने जन्म लिया। कोई कहता—

'वाह ! वाह ! क्या पसन्द है ? 'सत्य ही निष्पक्षता और प्यार की पसन्द है !'

कोई कहता ''

'सत्य ही आनन्द दायक पसन्द है। बेचारा चक्रवति का पुत्र अर्ककीर्ति तो बैठा का बैठा ही रह गया।'

कोई कहता

'अजी। क्या खाक की पसन्द है। एक चक्रवर्ती के वैभव को लात मारकर उसके नौकर को पसन्द किया है !'

कोई कहता—

'अजी। नौकर है तो क्या हुआ। उसमे कमी किसी बात की है। जो योग्यता जयकुमार मे है, उतनी चक्रवती के पुत्र मे कहा। विवाह राजकुमार से करना है या वैभव से।'

कोई महिला कहती ''

'वारी-वारी जाऊँ। बहुत ही सुन्दर वर पसन्द किया है।'

सहेलियाँ आपस मे कहती ''

'भाग्यवान है यह राजकुमार जिसको हमारी सहेली ने पसन्द किया है।

इस प्रकार अनेक प्रकार की बाते होने लगी। उधर राजकुमार

गए जो पराजित हो गए थे—तन उठे। भड़क उठे। गरज उठे। और अर्ककीर्ति को उकसाने लगे

'धिक्कार है आपको' जो एक चक्रवर्ती के पुत्र होकर भी चुप हो।'

'हा ! हाँ ! क्या मान रखा है आपका यहाँ पर।'

'हा ! हा। आपके रहते हुए और आपके सेवक को जयमाला ! ! ! डूब मरने की बात है।'

'आप आगे बढ़िए और जयकुमार का सिर धड से उतार दीजिए। हम आपका साथ देंगे।'

'हा ! हा ! हम भी साथ देंगे।'

वैसे ही अर्ककीर्ति के हृदय मे विद्वेष की आग धधक रही थी इस पर इन लोगो ने ऐसी-ऐसी ताने भरी बाते कहकर घी का काम किया।

अर्ककीर्ति का आवेश क्रोध मे बदल गया और क्रोध की आग को वह शमन नही कर सका। अपना अस्त्र सम्हालता हुआ वह गरज उठा।

'ठहरो ! ! !

× × × ×

जयकुमार और सुलोचना दोनो—वरमाला की परम्परा को पूर्ण कर एक दूसरे मे खोते हुए उस मणिमोतियो की झालरो से सुशोभित रथ मे बैठ चुके थे। राजा अकम्पन और रानी सुप्रभा मारे खुशी के फूले नहीं समा रहे थे। दोनो का चित्त यह जानकर कि 'सुलोचना ने योग्य वर का ही चयन किया है।'·· बहुत ही आनन्द मान रहे थे। मन्त्रीगण आगन्तुको को उपस्थित होने के लिए धन्यवाद दे देकर उत्तम भेट के साथ विदा कर रहे थे।

चारो ओर का वातावरण प्रसन्नता की लहरो मे नहाया हुआ था। तभी •

हाँ ! हाँ ! तभी एक रणभेरी सी बजी और मगल मे दगल हो गया। सभी एक दूसरे की ओर व्याकुल से देख रहे थे। अनेक विद्वेषी राजाओ ने उस प्रस्थान कर रहे रथ को रोक लिया। सुलोचना का कोमल हृदय काँप उठा।

महाराज अकम्पन सकते मे आ गए। 'यह क्या हुआ ? किसने यह विद्रोह खडा किया है ?' आदि प्रश्न उपस्थित समूह से पूछने लगे। तभी

तभी अर्ककीर्ति राजकुमार (चक्रवर्ती भरत का पुत्र) कोधित शेर की तरह दहाडता हुआ आया और गू जने लगा

'आपने हमारा अपमान किया है। यदि एक तुच्छ और सेवकीय-कीट को ही यह सम्मान देना था, यदि गधे के गले मे मन्दार पुष्पो की माला पहिनानी ही थी, यदि कीचड से ही चेहरा रगना था, यदि नीच से ही नाता जोडना था • तो हमे क्यो बुलाया गया था ? ? ?

सबको ऊफनते देखकर राजा अकम्पन ने महान् धैर्य से काम लिया और सरल व नम्रवाणी मे बोले•••

'मुझे दु ख है कि आप लोगो की आत्मा मे, विचारो मे इस प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई है। जहा तक मेरा प्रश्न है •• तो मैंने तो ऐसा कोई भी अनुचित कार्य नही किया—जिससे आपका अपमान हुआ हो।•• जयमाला डालने से पूर्व ही घोषणा कर दी गई थी कि 'सुलोचना जिसे भी 'वरण' कर लेगी वही उसका पति होगा। इसमे कोई भी विरोध नही 'करेंगे' और आप सबने वह घोषणा सुनकर स्वीकृति भी दी थी। अब आप को यो • '

'नहीं ! नही ! ! नही ! ! ! हम यह सब कुछ नही सुनना चाहते। यह सब बाप बेटी की मिली भगत है। हम उस जयकुमार को भी समझ लेंगे। आपको सुलोचना मेरे साथ ब्याहनी होगी अन्यथा• ••••'

'ऐसा तो अब हो ही नही सकता। आप व्यर्थ ही उदण्डता प्रकट कर रहे हैं।'

'ऐसा होकर रहेगा। । ।' यह कहकर अर्ककीर्ति ने रण भेरी बजवा ही दी। चारो ओर से मारो, मारो, काटो, काटो, छीनो, झपटो की आवाजे आने लगीं।

राजा अकम्पन गिरते-गिरते बचे। रानी सुप्रभा व्याकुलाती हो एक ओर महिलाओ के समूह मे चली गई।

आगन्तुकों मे अनेको ने अर्ककीर्ती राजकुमार का साथ दिया। कुछो ने अकम्पन का साथ दिया।

सुलोचना ने जब रथ का परदा उठाकर घमासान युद्ध देखा तो—अति व्याकुलता से साथ जयकुमार की ओर देखने लगी। सुलोचना के मन की व्यथा को जान जयकुमार मुस्करा उठे। बोले •

'घबराने वाली बात नही है प्रिये !'

'क्या आपको यह बात कुछ भी नही लगती ?'

'ना। •••••'

'युद्ध हो रहा है, घायल हो रहे हैं, पिता जी अकेले लड रहे है और आप • आप •'

'मैं सब देख रहा हूँ। यह सब एक नाटक सा है और मैं इस नाटक को क्षण मे नष्ट कर दूगा।•• •• अच्छा तुम निश्चिन्त होकर बैठो • मै भी जरा इन गीदडो की भभकियो को देख लेना चाहता हूँ।'

'क्या आप अकेले ही लडेंगे · ?'

'तो और कौन मेरा साथ देगा वहा—

· किन्तु मुझे किसी के साथ की आवश्यकता भी नहीं है।'

इतना कहकर उन गीदडो के बीच सिह उतरा। उसे सामने आते देखकर अर्ककीर्ति के दिल की आग और भी भभक उठी और एक निशाना बान्ध कर जहर बुझा तीर जयकुमार के सीने की ओर चला दिया।

जयकुमार ने अपनी बुद्धिमता से उस तीर को हाथ मे ही थाम लिया और मुस्कराकर कहने लगे ··

'आप महाराज भरत चक्रवर्ती के होनहार पुत्र हैं। आपके साथ युद्ध करना हमारे लिए शोभा की बात नही। अत आपको अपने पूज्य पिता के समान धीरवान, विचारवान और दयावान होकर यह असगत कार्य नही करना चाहिए।'

'ठीक है, ऐसा ही हो जायगा · पर एक शर्त के साथ।' अर्ककीर्ति ने कुपित स्वर मे कहा। इसके साथ ही जयकुमार पूछ उठे ·

सी है। मैं आपका सेवक· · · और सेवक की पत्नी तो बेटी—बहन के सदृश्य आपको समझनी चाहिए ·· ··"

"खामोश ! ! !" एक सिंह की सी दहाड गूंज उठी। अर्ककीर्ति की आखो मे से आग निकलने लगी। उसने पुन युद्ध शुरू कर दिया।

जयकुमार ने समझ लिया कि अर्ककीर्ति की बुद्धि का दिवाला निकल गया है। अत युद्ध करना ही चाहिए।

युद्ध हुआ और जमकर हुआ। अग्निवाण, पवनवाण, जलवाण, विषवाण, अमृतवाण का आदान प्रदान हुआ। अब गगन मडल पर भी गीध मडराने लगे थे। चारो और त्राही त्राही मची हुई थी। तभी

तभी अपनी रणकौशलता का उपयोग करके जयकुमार ने आर्ककीर्ति को वान्ध लिया। और महाराज अकम्पन·के पास उपस्थित किया। युद्ध बन्द का बिगुल गूंज उठा और सब यह देखने लगे कि क्या हुआ ?

सभी अर्ककीर्ति की बुराई कर रहे थे। जयकुमार बच्चे बच्चे की जुबान पर था। सब उसकी प्रशंसा कर रहे थे और सुलोचना ·· ··

सुलोचना तो मोद के होज मे नहा उठी। जब विजयी पति पास आया तो······सर्वस्व न्योछावर करके उसके तन मन से लिपट गई और प्रेमाश्रु का श्रोत बहा उठी।

राजा अकम्पन ने अर्ककीर्ति को स्वतत्र कर देने का आदेश दिया। स्वतत्र होते ही अर्ककीर्ति अपनी उदण्डता पर लज्जित होता हुआ झुक गया।

राजा अकम्पन ने उसे सीने मे लगा लिया और समझदारी से काम लेने की शिक्षा दी। अपने साथ लेकर राजा अकपन ने वाराणसी नगर की ओर प्रस्थान किया।

आगन्तुक सभी राजकुमार जयकुमार के साथ थे। सभी ने मगल स्वागत के साथ वाराणसी मे प्रवेश किया।

आज वाराणसी दुलहन सी सजी चमक रही थी। चारो ओर खुशियो की बहार छाई हुई थी। विवाह मण्डप मे जयकुमार और सुलोचना अनेक उमगो को सिमेटे हुए पाणिग्रहण सस्कार की रीति निभा रहे थे।

मगल परिणय कार्यक्रम कुशल पूर्वक समाप्त हुआ। राजा अकम्पन ने राज भवन मे ही एक कक्ष अत्यन्त मधुरता के साथ सजाया हुआ उन्हे विश्राम करने के लिए दिया।

प्रथम मिलन की रात को अनेक उमगो की उमडती लहरो मे तैरते, फिसलते, नहाते, और मौज लेते हुए दोनो ने एक दूसरे मे खोकर विश्राम किया।

१४–पत्नी की पति भक्ति और शील–शक्ति

महाराज भरत अपने ही दरबार में विराजे हुए थे। तभी द्वारपाल ने दूत आने की सूचना दी।

वाराणसी के राजा अकम्पन और जयकुमार दोनों ने नमस्कार करके मांगलिक परिणय वेला की समाप्ति की सूचना निवेदन करने को रत्नादि भेंट देकर अपने सुयोग्य दूत को चक्रवर्ती भरत की सेवा में भेजा था।

रत्नादि भेंट के साथ दूत, अत्यन्त नम्रता एवं शिष्टता से ओत प्रोत हो—चक्रवर्ती भरत के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने झुके हुए नेत्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाया और मस्तक झुकाकर चरण छूए फिर एक ओर नतमस्तक हो खड़ा हो गया।

"क्या संदेश लाए हो ! महाराज अकम्पन परिवार सहित कुशल तो हैं ?" चक्रवर्ती भरत ने मुस्कराते हुए प्रिय वाणी से पूछा। जैसे फूल झर गए हों, अमृत बरस गया हो—वैसे अपार आनन्द को मानकर दूतने निवेदन किया—

"प्रभो ! महाराज अकम्पन ने अपनी प्रिय पुत्री सुलोचना का विवाह स्वयम्वर विधि से जयकुमार जी के साथ सम्पन्न करा दिया है ?'

"कौन जयकुमार ?'

"आपके ही चरण सेवक, विजयी सेनापति जी।'

"ओह ! यह तो अत्यन्त ही प्रसन्नता से भरा सुखद सन्देश है ! नव दम्पति कुशल है ना ?"

"हा प्रभो ! आपके आर्शीवाद से दोनो आनन्द मे हैं। प्रभो, महाराज अकम्पन ने आपसे अनुनय विनय के साथ क्षमा की याचना भी की है ?"

"अरे ! ! !......क्षमा किसलिए ?"

"पभो ! जब सुकुमारी जी ने स्वयवर मण्डप मे भलीप्रकार चयन करके जयमाला जयकुमार जी के गले मैं डाल दी और जयकुमार जी का जय जय कारा गू ज उठा तो ... ."

"तो क्या हुआ . . बोलो बोलो ?"

"आपके प्रिय सुपुत्र कुमार—अर्ककीर्ति जी ने अमगल छेड दिया।

"अमगल ? कैसा अमगल ?"

"उन्होने महाराज अकम्पन जी को भी ललकारा और अशिष्ट वचन कहे, जयकुमार जी के साथ युद्ध हुआ—युद्ध मे अनेक राजगणो ने अर्ककीर्ति जी का ही साथ दिया—फिर भी अपनी रणकौशलता का उपयोग करके जयकुमार जी ने कुमार अर्ककीर्ति जी को बाध लिया ! प्रभो ! जब उन्हे महाराज अकम्पन के समक्ष उपस्थित किया गया तो—महाराज अकम्पन जी ने उन्हे तत्काल मुक्त करा दिया और सीने से लगा लिया ?"

"पर यह अमगल हुआ किसलिए ?"

"प्राणदाता महाराजेश्वर ! .. जयकुमार जी को चयन करना, माला पहिनाना यह आपके सुपुत्र को श्रेष्ठ न लगा और सुलोचना की वाछा करने लगे !"

"क्यो ? ? ?"

'अपनी पत्नी बनाने से लिए ! पर प्रभो ! सुलोचना तो

पराई हो चुकी थी और घोषणा के अनुसार जयकुमार जी की पत्नी कहला चुकी थी··· इस पर जयकुमार जी ने राजकुमार अर्ककीर्ति जी को बहुत समझाया उनके सामने अपनी सेवकता भी प्रकट की · पर·· पर"

"ओह !······" भरत का दिल इस वर्णन पर कसमसा उठा।

"प्रभो ! इस अमगल से महाराज, अकम्पन भी दुखी हुए और सबसे ज्यादा दुख तो उन्हे इस बात का हुआ कि उन्हे आपके प्रिय पुत्र के साथ युद्ध करना पडा। हे प्रभो ! इसीलिए उन्होने क्षमा की याचना की है।"

दूत यह सब निवेदन करके एक ओर नम्रता से खडा रह गया। महाराज भरत ने एक दुखभरी दीर्घ स्वांस छोडी ··· बोले ···

"इसमे महाराज अकम्पन का कोई अपराध नही। अपराध तो मेरे पुत्र का है और क्षमा मुझे मागनी चाहिए ! उनसे कहना कि · · हे राजन ! आपतो हमारे पूज्य हो ! आपने हमारे कुल की लाज रखकर अपराधी को भी गले लगाया। वास्तव मे हम बहुत लज्जित हैं।

आगे और कहना कि आप धन्य है जिन्होंने इस युग मे स्वयम्वर विधि की सर्वप्रथम स्थापना की है। यह परम्परा बहुत ही सुन्दर और सुखद है।

महाराज अकम्पन को धन्यवाद, और नव दम्पति को हमारा स्नेह भरा आशीर्वाद कहना।"

अनेक बार मस्तक झुकाता हुआ दूत रवाना हुआ।

प्रसन्नता भरा, खुशियो से झोली भरी लेकर अत्यन्त उत्साह और उमग के साथ दूत राजा अकम्पन के पास पहुँचा। जब

दूत ने चक्रवर्ती भरत का प्रेम वात्सल्य और न्यायनीति से भरा सन्देश सुनाया तो अकम्पन और जयकुमार दोनो पुलकित हो उठे। स्वत ही मुँह से निकल पडा " आखिर बडे, बडे ही होते है। उनमे छोटापन कहाँ ?"

× × × ×

आज जयकुमार और सुलोचना को विदाई दी जा रही है! अनेक व्यवहारिक राजा गए आए हुए है। एक आनन्द वर्धक और मोहक विदाई महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। रथ और हाथियो पर भेट दिया गया समान रखा जा रहा है। घोडे सजाए जा रहे है और गगा पार तक पहुँचाने के लिए अनेक राजा लोग तैयार हो रहे हैं।

उधर सुलोचना को आज सुसराल जाने के लिए दुल्हन बनाया जा रहा है। सहेलिया सजा भी रही है और चुटकिया भी ले रही हैं। ज्यो ज्यो कामुकता, भावुकता की बातें करती त्यो त्यो ही सुलोचना सिहर सिहर उठती और एक मीठी मीठी गुद गुदी सी अनुभव मे होती।

मगल गीत और मधुर वाजो की ध्वनि के साथ विदा किया। जयकुमार हाथी पर चढा। सुलोचना रथ में बैठी और सभी साथ जाने वाले राजा लोग घोडो पर बैठे।

सभी ने प्रस्थान किया। मगलकार्य और सुन्दर जोडी की अब वाराणसी मे जगह जगह चर्चा होने लगी।

गगा का किनारा आ गया। इठलाती, मदमाती बहती हुई गगा आनन्ददायक लग रही थी। जयकुमार ने यही पर विश्राम करने की घोषणा की। सभी साथ आए राजाओ को सधन्यवाद विदा किया स्वय के साथी अपने अपने डेरो मे ठहरे। एक भव्य मडप मे सुलोचना अपनी दासियो के साथ ठहरी।

उचित समय जान, जयकुमार ने महाराज भरत से मिलना चाहा। अयोध्या यहा से निकट ही थी। अत शीघ्र ही वापिस आने को कहकर वह घोडे पर बैठ अयोध्या के लिए रवाना हुआ।

× × × ×

"हाँ ! प्रभो, सेनापति जयकुमार जी आपके दर्शनो की ईच्छा लिए बाहर प्रतीक्षा कर रहे है।"

"अरे ? ? ? ··· उन्हे सादर लिवा लाओ।"

दरवान भरत की आज्ञा पाकर द्वार पर आया और नम्रता पूर्वक अन्दर प्रवेश करने के लिए जयकमार से निवेदन किया।

ज्यो ही जयकुमार ने भरत जी के दर्शन किए··· उनके चरणो मे नतमस्तक हो गया।

भरत ने उन्हे यथायोग्य आसन दिया और विवाह की, पत्नी की सभी बाते खट्टी मीठी बातो के साथ पूछने लगे।

नत मस्तक हुआ जयकुमार शर्माताशा उत्तर देने लगा।

"पागल कही के ····"

"जी। —जयकुमार चौक गया !

"पागल नही तो और क्या हो ····भरत ने मुस्कराते हुए कहा···अरे ! तुम हमारे सेनापति, और फिर हमे बिना बुलाए विवाह कर बैठे ! हम आते, जरा अच्छा आयोजन करते ' मिठाई खाते ···· और······और ···· "

"स्वामिन् ·· ···" जयकुमार गदगद हो [illegible] गया। कितना प्रेम बरस रहा था ··· कितना अपनत्व टपक रहा था ···· कहा तो ऐसे महान् निस्पृही पूज्य पिता और कहा यह [illegible] पुत्र·····जयकुमार [illegible]

[illegible]।

"[illegible]

हूँ ·· क्या तुम मुझे·······"

'नही प्रभो ! · · ··नही···ऐसा मत कहिए ! मैं तो आपका दास हूँ ! आपका दास हूँ । आपकी महानता ·····आपकी यह महानता का भार मैं सह नही सकता······वह तो एक बालकोपयोगी क्रीडा थी। कोई विशेष बात थी ही नही · · " जयकुमार ने भरत के चरण छूलिए।

अन्तरग के वात्सल्य और प्रेम से बातचीत करने के पश्चात् मिष्टान आदि खाया और बहुमूल्य भेट देकर जयकुमार को विदा किया।

जयकमार अपने आप मे अत्यन्त प्रसन्नता को सिमेटे घोडे पर बैठा बैठा हवा हो रहा था। महाराज भरत ने उसका इतना बडा सम्मान किया ·वह यह सब कुछ देख कर फूला नहीं समा रहा था।

रजनी ने विश्राम का आह्वान किया। प्रभाकर को विदा किया और झिलमिल तारो · ··सितारो की साडी ओढे ··· ·· थिरक उठी।

सुलोचना, गगा के किनारे उस साझ की मधुर मस्त वेला मे अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी · और प्रतीक्षा की घडिया रह रहकर सुस्त हुई जा रही थी, जो मन मे एक तडपन सी पैदा करती थी। तभी··· ··

तभी घोडे की टाप ने उसके मन के तार बजा दिए · वह चौकन्नी हो इधर उधर देखने लगी। दूर दूर से प्रियतम को लेकर घोडा दौडा आ रहा था। कुछ ही क्षणो मे प्रियतम उनके सामने थे।

गगा की शीतल धारा की लहरो मे कम्पन पैदा हुई ·· और लहर पर लहर छा गई ! एक सिरहन के साथ झन झन्नाते रोम से भावुक हो सुलोचना, जयकुमार से लिपट गई।

प्रात चहल पहल हुई। गगा के किनारे पर असख्य विहगो ने गाना प्रारम्भ कर दिया। प्रात की वेला मे गगा का शीतल नीर महक उठा।

अगडाई और मस्ती के रचेमचे दोनो नव दम्पति सेजपर से एक साथ उठे। सुलोचना की ओर जब जयकुमार ने देखा तो " सुलोचना ने अपने चहरे को दोनो हाथो से ढक लिया और पुलकित हो उठी।

"पगली कही की"……एक प्यार भरी हल्की सी चपत गोल गोल उभरे हुए गालो पर लगाते हुए जयकुमार सेज से नीचे उतरे।

जयकुमार ने यहा से प्रस्थान करने का आदेश दिया। सभी आदेश की प्रतीक्षा मे थे। अत आदेश मिलते ही रवाना हुए। सब साथी गगा को पार कर गए।

सुलोचना भी अपनी दासियो के साथ रथ मे बैठी। जयकुमार आगे आगे हाथी पर सवार हो गगा पार करने लगे। जयकुमार का मन प्रसन्न हो रहा था हर ओर विजय पा रहा था। तभी

तभी हाथी बुरी तरह चिघाड उठा। गगा की मजधार और गहरी भँवर मे हाथी खडा खडा चिघाड रहा था ना आगे बढ पाता था और ना पीछे हट पाता था।

जिन सपनो मे जयकुमार खो रहा था वे सब छूमन्तर हुए। वह यह देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ कि हाथी मझधार मे क्यो फँस गया ! वह चिघाड क्यो रहा है। जिसने भयकर युद्ध मे तलवार, भाले, बाण आदि की परवाह नही की, जो कभी भी नही घबराया …. वही हाथी यहाँ क्यो घबरा रहा है।

गगा का पानी बडे वेग के साथ चल रहा था। भँवर गहरी होती जा रही थी। तभी ……

"तभी सुलोचना चिल्ला उठी रुकिए ? रुकिए स्वामिन् !"

जयकुमार ने पीछे फिरकर देखा—सुलोचना रथ से उतरकर पानी मे तैरती आ रही है। वही से जयकुमार चिल्ला उठा।

"सुलोचना ···आगे मत बढो। बहुत गहरी भँवर है। देखो इस भँवर मे तो हाथी के पैर भी नही टिकते।"

उधर सुलोचना असहय दु ख से तडप उठी। आज उसका सौभाग्य सकट मे घिरा हुआ है····· उसकी माग का सिन्दुर गगा की धार से मिलता दिखाई दे रहा है—उसके मेहन्दी रचे हाथ का रँग फीका पडता नजर आ रहा है · सुलोचना काप उठी, तडपउठी, और रो उठी।

तभी उसके अन्तर्मन ने पुकारा ······"कायर कही की! इस प्रकार रोने से, घबराने से, और तडपने से भी कोई साहस कर सका है। अरी! तू महान् नारी है। सतीत्व की भरी पूरी है—तू चाहे तो इन्द्र का आसन भी डिगा दे। · ·· तू अपनी वास्तविकता को क्यो भूली जा रही है··· हिम्मत कर ····· और अपनी आराधना से बचाले अपने पति को,"

सुलोचना को जैसे होश आया! वह अन्तर मन हो अपने ईष्ट के चिन्तन मे खो गई। वह भक्ति के उस स्थल पर पहुँच गई जहा भक्त व भगवान मे कोई अन्तर ही नही रहता।

गगा कहा है, पानी कितना है, उसका पति कहा है? वह कहा है? आदि से वह परे थी। पानी के बीच खडी भी वह मन के बीच मे थी। तभी

तभी एक हुंकार सी हुई और हाथी चिघाड मारकर भँवर से बाहर निकल गया। जयकुमार के जान मे जान आई। सभी ने जयकुमार की जय बोली। पर सुलोचना ·····

सुलोचना इसकी कोई खबर नही थी। वह तो आराधना मे खोई हुई थी।

"नेत्र खोलो बहिन !" अतिनिकट आकर एक नारी ने सुलोचना को सम्बोधा ।

अपरिचित किन्तु मीठी वाणी को सुनकर सुलोचना की भक्ति के तार झनझना उठे और उसने नेत्र खोले ··

"कौन हो तुम ???"

"मैं ····जल देवी हूँ ····तुम्हारी पतिभक्ति की आराधना से इतनी प्रभावित हुई हूँ कि अपना सब कुछ तुम पर न्योछावर करने को उद्यत हूँ !"

"तो क्या ···· क्या······स्वामिन् ······"

"हाँ शुभे ! आपके पति गगा पार हो चुके है। किसी दुष्ट मगर ने पूर्व वैर की कलुषता को दिखाने के लिए हाथी को खाना प्रारम्भ कर दिया था—सचमुच ही वह मगर हाथी को मार देता और आपके पति का जीवन ······"

"नही ! नही ! ऐसा मत कहो !"

"मैं ऐसा कभी नही कहूँगी बहिन तुम्हारी पवित्र आराधना ने उनका सकट टाल दिया है।

'ओह ···· हे भगवान् !"

जयकुमार हाथी पर सवार हुआ ही वापिस आया और अपनी भुजा के सहारे सुलोचना को पानी मे से उठाकर हाथी पर बिठा लिया। सुलोचना अपने पति से लिपटी जा रही थी।"

मगल कामनाओ के साथ जयकुमार ने बड़े उत्साह, उमग और भारी स्वागत के साथ हस्तिनापुर मे प्रवेश किया। आनन्द से सुलोचना के साथ समय व्यतीत करने लगा।

एक दिन····

"आपको महाराज भरत ने स्मरण किया है ?"

"क्यो ? क्या कोई विशेष कार्य हो आया ?"

"जी ! इसका तो मुझे भान नही ।"

"कोई बात नही ! महाराज भरत की आज्ञा शिरोधार्य है। चलो··· अभी चलो।

और जयकुमार अयोध्या की ओर चल पडा।

१५—यह धरा यहीं की यहीं रही हम जैसे लाखों चले गये

भरत चक्रवर्ती एक महान् सम्राट और कुशल शासक सिद्ध हुये। ख्याति पृथ्वी पर फैल रही थी और अयोध्या के अधिपति महाराज भरत के नाम पर ही इस क्षेत्र का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ।

आज शासन करते करते उन्हे १२ वर्ष व्यतीत हो रहे हैं। अचानक ही उन्हे अपने प्रिय भ्राता बाहुबली की याद आ गई।

उन्होंने—उनकी तलाश प्रारम्भ कर दी। कोने-कोने में अपने सेवक भेज दिये।

अभी तक कोई भी बाहुबली के समाचार नहीं लाया था। भरत, प्रत्येक क्षण उनके समाचार पाने को उत्सुक थे। तभी •

तभी एक सेवक ने आकर प्रणाम किया • उसे देख कर भरत ने पूछा ••

कुछ समाचार प्राप्त हुए ?'

जी प्रभो।'

'कहा हैं भैया ? किस हालत मे है ?

तुमसे क्या कहा है उन्होंने ? 'कई प्रश्न भरत ने उत्सुकता वश पूछ डाले। उत्तर मे सेवक कहने लगा—

'प्रभो। आपके भ्राता के बुरे हाल है। ना मालूम कितने समय से एक स्थान पर खडे हुए हैं शरीर पर लताऐं छाई हुई हैं। पत्थर से बने अडिग खडे हुए है · ध्यान अपने आप मे लग कर खोये हुए हैं। ·'

'ऐसा क्यो ? ? ?' भरत जी का मन एक गहरी वेदना से तडप उठा।

'मालूम नही स्वामिन्। उनके पास न तो वस्त्र है और ना मकान ही।'

'ओह। · ' भरत, उनसे मिलने को तड़प उठे। वे रथ पर विराजमान हो चल पडे।

बाहुवली एक पहाड के शिखर पर खडगासन अवस्था मे आत्म ध्यान लगाए अचल, अडिग खडे थे। पैरो के पास कई भयकर जहरीले जन्तुओ ने घोसले बना लिए थे। शरीर पर अनेक लताऐं छाई हुई थी। भरत ने उनकी तपस्या, त्याग और सयम पहली वार देखा तो—देखते के देखते ही रह गए।

उनका हृदय उनसे बात करने को आतुर हो उठा पर वाहुवली तो अपने आप मे खोए हुए थे ·आज से नही एक माह से नही एक साल से नही·· अपितु बारह साल से।

भरत उनके दर्शन करके सीधे भगवान आदिनाथ के समवशरण मे पहुँचे। वारवार नत मस्तक हो · यही प्रश्न किया ··

'प्रभो। वाहुवली ने इतना कठोर त्याग, सँयम अपना रखा है कब से ? और अब तक आत्म ज्ञान क्यो न मिला ?'

भगवान् आदिनाथ ने दिव्य ध्वनि द्वारा भरत की शका का समाधान किया—

'वाहुवली वारह वर्ष से आत्म साधना मे लगे हुए है—अब तक आत्मज्ञान की उपलब्धि न होने का एक मात्र कारण उनके

मन मे एक शल्य का जमा रहना है।'

'वह क्या शल्य है प्रभो।'

'यही कि '''आखिर खड़ा तो भरत की पृथ्वी पर ही हूं ?'

'अरे!!!' 'भरत चौंक उठा' । प्रभो। क्या'''क्या ?'

'इस शल्य का निवारण भी तुम ही करोगे। बस मात्र तुम्हारे त्याग भाव की प्रतीक्षा है ?'

'मैं सब समझ गया प्रभो।'

इतना कहकर प्रणाम करते हुए भरत ने वहा से प्रस्थान किया।

विशाल काय खड्गासन बाहुबली के चरणो मे चक्रवर्ती भरत ने माथा टेक दिया। बार-बार आंसू झरने लगे। अपना मुकुट, बाहुबली के चरणो मे रख दिया। दीनता भरे शब्दो मे निवेदन करने लगे ·

कहा है किसी ने। ज्यो ही भरत ने अपनी तुच्छता प्रकट की, त्यो ही भरत ने क्षण भगुरता प्रकट की त्यो ही बाहुबली का शल्य निकल भागा और आत्म ज्योति चमक उठी। तुरन्त कैवल्य ज्ञान प्रकट हो गया। और कुछ समयान्तर पर कर्म की कड़ियो को काटकर अपने पिता से भी पहले मोक्षपद प्राप्त कर लिया।

भरत जी पर इस सबका एक चमत्कारिक प्रभाव पडा। अब वह ससार की, वैभव की, वास्तविकता समझ चुके थे, जान चुके थे। यद्यपि सासारिक वैभव की उनके पास कुछ भी न्यूनता नही थी—पर वह सब उन्हे काँटे के सदृश्य लग रही थी।

'जल से भिन्न कमल' की भाति भरत जी उस वैभव मे रहने लगे। सदैव सावधान, आत्म ज्ञान को उद्यत रहने लगे।

एक दिन ··

एक दिन एक अविश्वासी देव उनकी परीक्षा को आया और कहने लगा कि मैं इस पर विश्वास नही करता कि आप इतने बडे वैभव के स्वामी होते हुए भी इसमे विरक्त है। यह तो असम्भव है। मैं आपकी इस प्रशसा को निराधार करना चाहता हूँ।'

भरत जी मुस्करा उठे, बोले···'मुझे प्रशसा की भूख नही है मित्र पर यदि तुम विश्वास लेना चाहते हो तो यह जरूर दिलाया जाएगा।'

'पर कब ! ? ?'

'विश्वास वाली बात जरा ठहर कर समझायेगे · इसके पहले क्या आप मेरी एक आज्ञा का पालन करेंगे ?'

'अवश्य। अवश्य करूँगा। कहिए क्या आज्ञा है आपकी ?'

'लीजिए। यह तेल से भरा कटोरा है। इसे अपने दोनो हाथो पर लीजिए और मेरे सभी कमरो, को देख आइए···वैभव को निरख आइए रानियो से मिल आइए·· ···· । लेकिन एक बात ध्यान मे रहे।'

'वह भी बता दीजिएगा।'

'यह सेवक आपके साथ रहेगा ··और देख रहे होना · इसके हाथ मे यह चमचमाती तलवार ?'

'हाँ। हा। देख रहा हूँ, पर इसका तात्पर्य ???'

'इसका तात्पर्य यही है कि—यह सेवक आपके साथ रहेगा और ज्यो ही कटोरे के तेल की एक भी बूद नीचे गिरी कि आपका सिर, धड से अलग कर दिया जाएगा। अब आप जा सकते है।'

वह देव तेल का कटोरा दोनो हाथो पर रखे चला जा रहा था। कटोरा लबालब भरा हुआ था। सीढियो पर चढना, उतरना, इधर उधर जाना सभी हुआ—पर ध्यान सदैव उसका उस कटोरे पर, तेल पर ही रहा।

घूम फिर कर वह देव शाम तक आया। और प्रसन्नता के साथ कटोरा मय तेल के ज्यो का त्यो रख दिया। बोला—

'देखा आपने मेरा काम। एक भी बूद नीचे नहीं गिरने दी।'

'धन्यवाद।' भरत जी मुस्कराए। बोले · 'अच्छा यह तो बताइए · आपने क्या-क्या देखा ?'

'जी !!!'

'मेरा तात्पर्य यह है कि वैभव की चमक, रानियो की झमक, कमरो की दमक आपको कैसी लगी ?'

'वाह जीवाह। मेरा तो सारा ध्यान कटोरे मे भरे तेल पर रहा। यदि उधर देखता और तेल की एक भी बूद गिर जाती तो गया था न काम से।' 'आप भी खूब है · काम तो सौंप दिया ऐसा और अब पूछ रहे हैं·· चमक, झमक और दमक का हाल।'

'धन्यवाद। तो अब आपको विश्वास मिल गया।'

'क्या मतलब ???'

मेरे मित्र। जिस तरह तुम्हे तलवार का ध्यान रहा…वैसे ही मुझे भी सदैव मौत का ध्यान रहता है। क्यो रचू, पचू इस वैभव मे ? मौत का क्या कोई समय है ? अर्थात् क्या मालूम कब आजाऐ।'' क्यो रच पच कर समय व्यर्थ किया जाय ?'

'अरे ?!! '' देव चौंक उठा।'

'चौंको नही मित्र। सत्यता यही है। जीवन की क्षण भगुरता का ध्यान रखकर प्राणी को सदैव सन्तोष धारण करके रहना चाहिये यह ठाठ बाठ तो मात्र पुण्य की महिमा है जो कभी नष्ट हो सकते है।'

'मै ''मैं'' हार गया।'

'हार गए ? कैसी हार ?'

'मै समझता रहा था कि आप इतने वैभव मे, ठाठबाट मे रचपच कर इससे निर्लिप्त नही रह सकते। और इसीलिए आपकी परीक्षा लेने का मैने दुस्साहस ठान लिया।'

'मेरे मित्र। तुम ठहरे देव। देव सदैव स्वर्गीय वैभव मे रचपच कर अपनापन भी भूल जाता है—वह विषय वासना का दास होता है। पर मानव'''। मानव एक ऐसा प्राणी होता है जो अपना आत्म कल्याण कर सकने के सभी उपाय कर सकता है। यदि मानव चाहे तो • विषय वासना के ठोकर मार सकता है • आरम्भ परिग्रह त्याग सकता है।

• अशान्त वातावरण से निकल कर शान्ति के पथ पर लग सकता है। आत्मा से परमात्मा बन सकता है।

किन्तु'' उसे अपनी दृष्टि, अपने विचार सुधारने होंगे। उसे अपने हृदय से—

—तृष्णा निकालनी होगी।

—घृणा त्यागनी होगी।

—द्वेष व राग का वितान फाड़ना होगा।

—कषाय प्रवृत्ति को मिटाना होगा।

याद रखो मेरे मित्र। जब मानव की दृष्टि सम्यक् प्रकार हो जाती है—तब वह सम्यक दृष्टि कहलाने लगता है। ··

भरत जी ने हर प्रकार सिद्धान्तिक रूप से समझाया और देव अति प्रसन्न हो चला गया।

भरत जी ने महान् वैराग्य-पोषक तत्वों का खूब अध्ययन किया, मनन किया और संसार की असारता को समझने लगे। अपने ही अन्तर में खोने लगे।

× × × ×

भरत जी आज गहन चिन्तन में थे, मनन में थे, तभी···

हाँ! हा! तभी एक सेवक ने अभिवादन पूर्वक प्रवेश किया—

'स्वामिन् · '

'कहो! कहो! क्या कहना चाहते हो?

'स्वामिन्, हस्तिनापुर के महाराज जय कुमार जी···'

'हा! हा कहो—क्या हुआ
जय कुमार जी को?'

'स्वामिन्! उन्होंने घर-बार छोड़ दिया है, जंगल में। निवास कर लिया है।'

'पर क्यों??? · क्या दुःख हुआ था उन्हें? क्या कोई गृहस्थी में विवाद हो गया था? या कोई विद्रोह हो गया था। या आपस में कलह हो गया था?'

'जी नहीं प्रभो। यह तो सब कुछ नहीं हुआ था?'

'तो फिर क्या बात हुई? · क्यों उन्होंने घर-बार छोड़ा? क्यों उन्होंने जंगल में निवास लिया? बोलो · बोलो · ।'

'प्रभो। कहते हैं कि उन्हें वैराग्य हो गया है।'

'क्या???' भरत् जी चौंक उठे।

'हा स्वामिन् । गली-गली मे, शहर के कोने-कोने मे यही चर्चा चल रही है ।'

'ओफ!' भरतजी जैसे होश मे आए हो! अपने आपसे कहनेलगे–

'मैं व्यर्थ ही यहा इस झंझट मे फँसा हुआ हूँ । इसे कहते है— आत्म कल्याण करना । और एक मैं हूँ…कि विचार ही पूरे नही होते ।'

'स्वामिन् ! क्या मुझे प्रवेश की आज्ञा है ?

'आ ओह! आओ• आओ प्रिये । बैठो • बैठो…।'

महारानी ने प्रवेश किया और पास ही के आसन पर विराज गई। भरत जी फिर अपने मे खो गए थे । महारानी ने बारम्बार उनके चहरे की ओर देखा ना मुस्कराये, ना कुछ बोले, ना कुछ सुने। महारानी कुछ चिन्तित सी हो उठी। पूछने लगी—

'स्वामिन् ।…'

'आ • हा क्या बात है ?'

'आज आप इतने उदास क्यो है • क्या कोई विशेष कारण • •'

'हां प्रिये । आज मै अपने पर आ रहा हूँ। देखो • तुम मुझे बहुत प्यार करती हो ना ।'

'भला आज आपने यह क्यो पूछा ? क्या मै आपको • •'

'नही ! नही ! मेरा मतलब यह नहीं प्रिय । मै तो • तो • ।'

'ठहरिए । आपकी व्यथा मैं समझ गई हूँ ।' महान् ज्ञान की सागर महारानी सुभद्रा ने कहा—'आप ससार से उदासीन हुए जा रहे हो • पर यह उदासीनता तो राग भरी है, खोई-खोई है। इसमे ना रस है और ना सरस है ।

आप भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ जी) के चरण सान्निध्य मे जाइए वहीं आपकी यह अभिलाषा पूर्ण होगी ।

भरत जी देखते के देखते ही रह गए। उन्होंने उसी वक्त भगवान आदिनाथ के चरण सान्निध्य मे जाने की तैयारी की ।

१६—कैलाशपति भगवान शिव

कैलाश पर्वत पर भगवान आदिनाथ विराजे हुए थे। अखण्ड तपस्या मे लीन। पास ही से एक पतली पर सुहावनी जल की धारा आजकल मे ही वह चली थी। धीरे-धीरे वह अपना विस्तार करती रही और एक नदी का रूप धारण कर बैठी।

कैलाश पति भगवान शिव (आदिनाथ अर्थात्-जगत के प्रथम स्वामी के चरण सान्निध्य से निकली यह जल की विस्तृतधारा 'गगा' कहलाई जाने लगी।

वृषभ (बैल) चिह्न से चिह्नित और त्रिशूल (तीन प्रकार के शूल—जिनसे ससार के दुखो का सहार किया जाता है—यथा-सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यक् चरित्र) सहित भगवान आदिनाथ कैलाश पर्वत पर विराजमान थे।

पार्वती (पर्व—अति, अर्थात् महान् सुखदायक कल्याणकारी 'मोक्षलक्ष्मी) उनके अग-अग मे समाई हुई थी। तेजवान चहरे पर महान् त्यागी व तप की प्रभा होते हुए भी चहरे मे भोलापन (निष्कपटता) झलक रही थी। तभी तो इन्हे भोलानाथ कहते है।

आपने ही तो सर्व प्रथम पृथ्वी का भरण पोषण किया। पृथ्वी पर के सकट का शमन किया और इसीलिए आप 'शम्भू' कहलाने लगे।

ससार के प्राणियो को सुख देने वाले, सकट निवारण करने वाले आप प्रथम महापुरुष, महान् आत्मा, महान् योगी थे—तभी तो आप 'शकर' कहलाए ।

समवशरण मे विराजे हुए आपका मुँह चारो दिशाओ से दिखाई देता था—तो ऐसा भान होता था—कि मानो आपके चार मुख हो। और तभी तो आप चतुर्मुखी ब्रह्मा कहलाने लगे ।

सृष्टि की रचना सर्व प्रथम आपने ही तो की थी—इसी लिए तो आप सृजन हार कहलाए ।

आदम को सतपथ दिखाकर हव्वा से आदम बनाया। आपही ने तो तहजीब, सिखाकर हैवान को इन्सान बनाया। तभी तो आप बाबा आदम कहलाए जाने लगे ।

आप परवर दिगार हुए, जमीन के मालिक हुए और अव्वल (प्रथम) अल्लाह (भगवान) हुए ।

सच तो यह है ।

भगवान आदिनाथ—जैनियो के नही अपितु मानव मात्र के हितैषी सतपथप्रदशक और जीवन दाता थे। उनका उपदेश सर्व-जीवो के लिये समान था। किसी एक जाति या मजहब के लिये नही ।

आज कैलाश पर्वत का ककर-कंकर, शकर हो रहा है। सर्प भगवान आदिनाथ के शरीर पर लिपटे हुए है—भयकर जानवर विद्वेष छोडकर इर्दगिर्द बैठे है और भगवान आदिनाथ अपने आप मे मग्न है। तभी—

तभी भरत ने आकर भगवान के चरण छूए। सुलोचना एव अन्य नारियाँ भी वहा आई हुई थी। हजारो नर-नारी वहा दर्शनो को एकत्रित थे ।

मात्र दर्शन करते ही भरत को अपने आपका भान हुआ और वैराग्य विभूषित हो गया। ब्राह्मी और सुन्दरी भी आर्यका रूप मे वही थी। उन्ही के पास अनेको नारियो ने दीक्षा ली ।

चारो दिशाओ से जय-जय कार होने लगा ।

भगवान आदिनाथ मौन थे।' मौन थे। और अपने ही आप मे लीन थे। आज पवन मन्द और उर्धगति से चल रही थी।

आकाश-धरा पर विमान आ जा रहे थे। पुष्प वृष्टि हो रही थी। वायुमण्डल सुगन्धि से सुरभित हो उठा था।

अष्ट कर्म की वेडियो मे से ४ कर्म की वेडिया तो केवल ज्ञान प्राप्त करके पूर्व ही काट चुके थे, अवशेष कडियो का आज निर्मूल हुआ जा रहा था।

तभी गगन-मगन होकर नाच उठा। मधुर और विजय भरे वाद्य बज उठे। भगवान आदिनाथ की मगलदायक देह देखते-देखते ही कपूर की भाति उड गई। मात्र सिरकेश और नाखून शेष रहे। जिन्हे देवगण मगल कलश मे एकत्रित कर रहे थे।

आत्मा ?

भगवान आदिनाथ की आत्मा पूर्ण परमात्मा बन चुकी थी। अर्थात् परमात्मा बन चुकी थी। अर्थात् सिद्ध पद पर जा विराजमान हुई थी। जन्म मरण के चक्कर से परे, अनन्त ससार से सूदूर और अपने ही आप मे लीन, ज्ञानानन्द मे रत—परमपद प्राप्त कर चुकी थी।

भगवान आदिनाथ का निर्वाण महोत्सव नर, सुर आदि ने मनाया।

भरत जो दीक्षित हो चुके थे—आज परम वैराग्य के रग मे रँगे जीवन की वास्तविकता को पहचान गए थे। भगवान आदिनाथ ने गृहस्थ से सन्यास और सन्यास से निर्वाण प्राप्त करने की परम्परा को जन्म दिया।

मानव का कर्त्तव्य-मानव-प्रसिद्ध महामानव-आदिनाथ ने सरलता से प्रदर्शित किया। आपके जीवन के अनुसार प्रत्येक मानव को अपना जीवन सफल बनाने के लिए परम्परा को ध्यान म रखकर जीवन का सदउपयोग करना चाहिए। यथा—

(१) जीवन का चौथाई भाग विद्याध्ययन मे व्यतीत करना चाहिए।

(२) जीवन का चौथाई भाग समाप्त हो जाने पर नियम से ग्राहस्थिक परम्परा को निभाने के लिए विवाह करना चाहिये और जीवकोपार्जन का उपाय करना चाहिए। जिसमे धर्म को मुख्य स्थान दे।

(३) जब जीवन का आधा भाग समाप्त हो जाय तो अपनी योग्य सन्तान को कार्यभार सम्हला कर आप उसकी देखभाल करे, उसे सतपथ दिखाए।

(४) जब जीवन का एक चौथाई भाग शेष रह जाए तो नियम से आत्म चिन्तन के रास्ते पर लग जाना चाहिए और सन्तोष धारण करके विचारो मे वैशिष्ठ पवित्रता को पनपाना चाहिए।

इस प्रकार आयु के अन्त तक आत्म चिन्तन करना चाहिए।

आयु कितनी है, जीवन का कैसे विभाग किया जाय? यह प्रश्न आप कर सकते है। अत इसके विषय ना उलझा कर अपना जीवन ८० साल का मान लेना चाहिए और उसी के अनुसार परम्परागत कार्य करना चाहिए।

वैसे तो जीवन-लीला का कोई निश्चित समय नही कि कब समाप्त हो जाय। अत ज्ञानी पुरुष को तो सदैव ही सत्पथ पर चलते रहना चाहिये। प्रारम्भ मे ही जीवन म सन्तोष सरलता, और सादगी रखना चाहिये।

पारिवारिक परिपालन के साथ-साथ अपने जीवन के सुधार का भी ध्यान रखने वाला महान् आत्मा ही कहलाती है।

भगवान आदिनाथ ने संसार को क्या दिया? इस अन्त मे इस विचार पर तथ्य प्रस्तुत करेंगे।

भगवान आदिनाथ ने ससार मे अवतार (जन्म) लेकर क्या नही दिया ? अर्थात सभी कुछ तो उन्होने दिया है। यथा—

मानवता, मानवोपयोगी कर्म, जगत का निर्माण, ससार मे पवित्रता, त्याग, सयम, तप, वैराग्य, सामाजिक नीति, राज्यनीति, शासन परम्परा, और मानव मे महानता का-श्रोत

सभी कुछ तो भगवान आदिनाथ ने प्रदान किया है। अत आज सारा विश्व उन्ही की रचना का प्रति फल है। उन्हे—

—कोई आदिनाथ (ऋषभ देव) कहता है।

—कोई—ब्रह्मा कहता है,

—कोई—शिव कहता है,

—कोई—बावा आदम कहता है

—कोई—परमेश्वर कहता है।

कुछ भी कहो सृष्टि के आदि पुरुष भगवान आदिनाथ प्राणी मात्र के हितैषी थे और उन्ही ने मानव को मानवता प्रदान की।

निरूपम निरान्तक नि शेष निर्भय,
निरञ्जन नि शेष निर्मोह ! ते।
परमसुख परदेव परमेश परमवीर्य
निरघ निमल रूप वृषभेष। ते ॥

। जयमगलम् ।

नोट—आपको यह कथानक कैसा लगा—अपनी अमूल्य राय अवश्य हमे लिखने की कृपा कीजियेगा। हम पाठक गण के पत्रों के आने की प्रतीक्षा करेंगे। धन्यवाद

आपकी आभारी
जनिल पॉकेट बुक्स
ईश्वरपुरी मेरठ शहर।